नरेन्द्र कोहली की 'दीक्षा' उपन्यास का विश्लेषण

चैत्रा एस. बी.एड., पीएच.डी.

बिंब प्रकाशन
नं.105/4, (पहला मंज़िल) के–44, तोटदहट्टी रोड,
केंपनंजांब अग्रहार (होटेल तारा के सामने),
के.आर. मोहल्ला, मैसूरु–570 024

Written by

Chaitra S. Ph.D., B.Ed.
Assistant Professor & Head,
Hindi Department
J.S.S. Women's College, Mysore.

Published by

Bimba Prakashana
No. 105/4, K-44, (First Floor) Thotada Hatti Road
Kempananjamba Agrahara (Opp. Hotel Tara)
K.R. Mohalla, Mysuru-570 024
Mobile : 9739296847

© : Author

First Edition : 2021

Total No. of Pages : 152

70 GSM Maplitho paper is used for printing

Size of the Book : ¼ Demy

Price : Rs.125-00

ISBN : 978-81-955799-2-1

DTP : Vishalini M.G.

Printed at

Keerthan Graphics
K.R. Mohalla, Mysuru
Mobile : 9916226213
Email: keerthangraphics@gmail.com

भूमिका

हिन्दी के शिखरवर्ती उपन्यासकारों में नरेन्द्र कोहली का परिगण्य स्थान है। पौराणिक परिप्रेक्ष्य में साम्प्रतिक प्रासंगिकताएँ उनकी रचना धर्मिता का महत्वपूर्ण अन्तर्प्रवाह है। महाकाव्यीय कथावस्तु के धरातल पर उन्होंने तत्युग के अभिनव स्वरूप में चित्रांकित करते हुए तर्कमयी युग दृष्टि से ओत–प्रोत मौलिक उद्भावनाएँ प्रस्तुत की है। पौराणिक आख्यानों में अमानवीय अतिमानवीय, दैवी तथा अद्भुत चमत्कारिक संदर्भों को नरेन्द्र कोहली ने तर्कसम्मत बौद्धिकता से संवेष्टित करके उन्हे मनोवैज्ञानिक धरातल पर जीवन्त किया है। किसी भी कृतिक द्वारा अपनी संस्कृति के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता का अनुभव उस साहित्य के लिए शुभत्व का संकेत है। यह उपक्रम उस समय और महत्वपूर्ण हो उठता है जब कोई कृतिक वैज्ञानिक, आलोक में आधुनिक जीवन–दर्शन की पड़ताल करना चाहता है और प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति अंधाग्रही न हो। यह प्रकिया उस युग में विशेष सार्थक और प्रासंगिक समझी जानी चाहिए जिसमें प्राचीन संस्कृति तथा नैतिक मूल्यों की महत्ता को लेकर महिमामण्डित नारे लगाए जा रहा है। यह मोह पुनरूस्थानवादी मूल्यों को सबंद्ध करके मानवीय विकास की प्रगतिमयी संभावनाओं का पथ अवरूद्ध करता है। इससे प्रतिगामी मूल्यों की अवांछनीय तमिस्रा का पथ प्रशस्त होता है। उपन्यास दीक्षा में डॉ नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक संदर्भों से परिसृष्ट राम कथा पर आधारित 'रामायण' के कथ्य और विमर्श को अभिनव स्वरूप में ढालकर परकाय प्रवेश जैसा साहसिक उपक्रम प्रदर्शित किया है। रामकथा की नयी व्याख्या करने का प्रयास न केवल कौतुहल–प्रत्युत कतिपय सांस्कृतिक, साहित्यिक और कलात्मक प्रश्न भी उत्पन्न करता है। 'नरेन्द्र कोहली की पौराणिकता में आधुनिकता की अवधारणा के संबंध में अभिज्ञा प्रस्तुत है।

दीक्षा की विषय वस्तु सिद्धाश्रम के उत्पात से लेकर परशुराम की पराजय तक की कथा है, किन्तु इसे लेखक नरेन्द्र कोहली जी ने एक नई दृष्टि से, एक नये रूप में प्रस्तुत किया है। विशाल जंबूद्वीप में हो रहे राक्षसी उत्पात और उसके परिणाम स्वरूप सत् मूल्यों के हनन् और राक्षसी मूल्यों के भयानक आतंक के विस्तार को देखने और उसका प्रतिरोध करने की 'दीक्षा' ऋषि विश्वामित्र राम को देते है। कथा में विविध प्रसंगों के बीच लेखक ने विभिन्न राजनैतिक अव्यवस्थाओं, जन सामान्य के शोषण, बुद्धिजीवियों के कर्तव्य, समाज में नारी का उत्थान, स्त्री.पुरूष संबंधों, जाति और वर्ण की विभीषिकाओं, लोलुप और स्वार्थी बुद्धिजीवियों, शासकीय अधिकारियों आदि का क्रांतिकारी विश्लेषण किया है। अपनी मान्यताओं के सहारे प्रख्यात पौराणिक कथा को समकालीन संदर्भों में ढालकर मौलिक तथा आधुनिक उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया है।

कथा के विभिन्न पात्रों को मानव रूप में प्रस्तुत कर कथा में सजीवता व जीवन्तता का आभास कराया है। उपन्यासकार श्री नरेन्द्र कोहली जी का 'दीक्षा' लिखने का उद्देश्य पौराणिक मूल्यों की व्याख्या नहीं बल्कि समकालीन समस्याएँ हैं जो उपन्यास लिखते समय लेखक को प्रोत्साहित कर रही थी। उपन्यास एक सर्वविख्यात राम कथा पर आधारित जरूर है परन्तु आधुनिक संदर्भों में लिखे जाने के कारण व आधुनिक भाव–बोध से सम्पन्न होने के कारण यह उपन्यास समूचे समाज का मार्गदर्शन करता है। प्रस्तुत उपन्यास 'दीक्षा' में नरेन्द्र कोहली ने हिंसा–अहिंसा, मनोबल, पशुता–मनुष्यता आदि से संबंधित प्रश्नों को उठाकर उनके समाधान खोजने का प्रयास किया है।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी कृति में किसी एक समाज को, किसी एक युग को अभिव्यक्त कर देता है। साहित्यकार अपने समय के जीवनानुभवों द्वारा चेतना के स्तर पर जिस जागरूक चिंतन को जन्म देता है अन्ततः वही चेतना है। युग चेतना कलाकार अपनी लेखनी से अपनी–अपनी दृष्टि के

अनुसार युग–विशेष की परिस्थितियों को समझने और अपनी–अपनी शक्ति के अनुसार उन्हे बदलने तथा उन्हे चित्रित करने का प्रयास करता है। इस प्रयत्न में युग–चेतना कलाकार कभी–कभार अपने संस्कारगत् मोह के कारण प्राचीन मान्यताओं और परम्पराओं को ही नये रूप में ढालता है। समर्थ साहित्यकार अपनी बात इस तरह से अभिव्यक्त करता है कि पाठक उसे उसके समूचे रूप से ग्रहण कर सकें। ऐसी परिस्थिति में युग–विशेष की सामूहिक चेतना उसे प्रभावित करती रहती है। यह प्रभाव साहित्यकार के अपने समय की परिस्थितियाँ संवेदनशील हृदय को मथने में और प्रेरित करने में सहायक सिद्ध होती है तो साहित्यकार उन्हे अपने निजी व्यक्तित्व एवं प्रतिभा से कलात्मक अभिव्यक्ति देकर शाश्वतता प्रदान करता है। मौलिक साहित्य के सृजन की यह प्रक्रिया सदियों से चली आ रही है। 'रामायण' तथा 'महाभारत' जैसे महाकाव्य आज भी अपनी सार्थकता बनाये हुए है। इन महाकाव्यों के कथातत्वों पर आधृत कृतियों में युग–चेतना को सहेजकर अभिव्यक्ति देने में रचनाकारों ने अपनी–अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। किसी भी साहित्य के लिए यह नितांत जरूरी है कि वह अतीत से संजीवनी शक्ति प्राप्त करते हुए भी भविष्य की ओर निर्देश करे। इसी धरातल पर इतिहास से साहित्य अपने अलगाव का औचित्य प्रमाणित करता है। यह प्रक्रिया अपने युग की पुकार के अनुरूप एक ही पात्र को अलग–अलग रूप में अभिव्यक्त करती है। जैसे कि बाल्मीकि की 'रामायण' में राम वही नहीं है जो तुलसी की 'रामचरित मानस' के है या मैथिली शरण गुप्त के साकेत के हैं अथवा नरेन्द्र कोहली जी के 'अभ्युदय' के है। अतः वर्ण विषय की ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए जब डॉ0 नरेन्द्र कोहली जी आधुनिक संदर्भों से जोड़कर जब अपने साहित्य को मौलिक तथा आधुनिक नवीन स्वरूप देते है। तब उनके साहित्य की पृष्ठभूमि में युग–चेतना महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

मानवीय सभ्यता का पूरा इतिहास मिथकों में संग्रहित है। ज्ञान–विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अन्तर्गत व्याख्यायित और विवेचित करके अनेक विद्वानों ने मिथक की सार्थकता को असंदिग्ध बनाया है। प्रत्येक युग का मिथक अपने युग का वास्तविक परिचय सुनाता है। मानवीय सभ्यता के विकास के प्रत्येक क्षण के साथ सहयात्रा करने के कारण प्रत्येक युगीन यथार्थ को आत्मसात करने में मिथक सफल हुआ है। आधुनिक युग तक इसकी अभिव्यक्ति क्षमता बरकरार है। पहले, मिथक की चर्चा पौराणिक एवं आलौकिक कथाओं के अन्तर्गत होती थी। लेकिन आज मिथक सामाजिक एवं मानवीय यथार्थ के साथ घुल–मिल गया है। यानि पौराणिक मिथकों की नये ढ़ंग से व्याख्या हो रही है। नये–नये मिथकों का गढ़न हो रहा है। मिथकों में हमारे जीवन के सच और सभी विचार और भावनाएँ नीहित है। मानवीय भावनाओं की सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति करने के कारण मिथकों के प्रति लोगों की आस्था अधिक रहती है।

पौराणिक कथावस्तु के आधार पर लिखा हुआ उपन्यास उपन्यास ही कहलाता है पुराण नहीं। ''मिथक'' का यह लचीलापन ही उपन्यास के लिए उपयोगी वस्तु है। स्वयं नरेन्द्र कोहली का मानना है–''भारतीय साहित्य में ''मिथक'' को असत्य या असत्य के आस–पास की वस्तु नहीं मान सकते। हमारी मान्यताओं के अनुसार जो कुछ भी हमारे शास्त्रों और धर्म ग्रंथों में वर्णित है, वह न केवल सत्य है, वरन सशक्त है, इसलिए हम मिथक को पुराकथा कहते है।

'दीक्षा' में नरेन्द्र कोहली जी ने पौराणिक कथावस्तु में तार्किक अर्थघटन का समावेश किया है। मिथक और साहित्य के बीच घनिष्ट संबंध तथा समाज का आइना होने के कारण साहित्य में मिथकीय प्रयोग सार्थक सिद्ध हुआ है और इसकी सार्थकता का प्रत्यक्ष प्रमाण नरेन्द्र कोहली जी का राम कथा मूलक उपन्यास 'दीक्षा' भी है जिसकी समीक्षा इसमें की जाएगी।

अनुक्रमणिका

- डॉ. नरेन्द्र कोहली : पौराणिकता में आधुनिकता की अवधारणा 8
- दीक्षा : एक कथ्यगत अध्ययन 31
- दीक्षा : युग चेतना 67
- दीक्षा उपन्यास में मिथकीय चेतना 113

डॉ. नरेन्द्र कोहली : पौराणिकता में आधुनिकता की अवधारणा

सम्प्रति हिन्दी के शिखरवर्ती उपन्यासकारों में नरेन्द्र कोहली का परिगण्य स्थान है। पौराणिक परिप्रेक्ष्य में साम्प्रतिक प्रासंगिकताएँ उनकी रचना धर्मिता का महत्वपूर्ण अर्न्तप्रवाह है। महाकाव्यीय कथावस्तु के धरातल पर उन्होनें तत्युग के अभिनव स्वरूप में चित्रांकित करते हुए तर्कमयी युग दृष्टि से ओत–प्रोत मौलिक उद्‌भावनाएँ प्रस्तुत की है। पौराणिक आख्यानों में अमानवीय अतिमानवीय, दैवी तथा अद्‌भुत चमत्कारिक संदर्भों को नरेन्द्र कोहली ने तर्कसम्मत बौद्धिकता से संवेष्टित करके उन्हे मनोवैज्ञानिक धरातल पर जीवन्त किया है। किसी भी कृतिक द्वारा अपनी संस्कृति के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता का अनुभव उस साहित्य के लिए शुभत्व का संकेत है। यह उपक्रम उस समय और महत्वपूर्ण हो उठता है जब कोई कृतिक वैज्ञानिक, आलोक में आधुनिक जीवन–दर्शन की पड़ताल करना चाहता है और प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति अंधाग्रही न हो। यह प्रकिया उस युग में विशेष सार्थक और प्रासंगिक समझी जानी चाहिए जिसमें प्राचीन संस्कृति तथा नैतिक मूल्यों की महत्ता को लेकर महिमामण्डित नारे लगाए जा रहा है। यह मोह पुनरूस्थानवादी मूल्यों को सबंद्ध करके मानवीय विकास की प्रगतिमयी संभावनाओं का पथ अवरूद्ध करता है। इससे प्रतिगामी मूल्यों की अवांछनीय तमिस्रा का पथ प्रशस्त होता है। उपन्यास दीक्षा में डॉ. नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक संदर्भों से परिसृष्ट राम कथा पर आधारित 'रामायण' के कथ्य और विमर्श को अभिनव स्वरूप में ढालकर परकाया प्रवेश जैसा साहसिक उपक्रम प्रदर्शित किया है। रामकथा की नयी व्याख्या करने का प्रयास न केवल कौतुहल–प्रत्युत कतिपय सांस्कृतिक, साहित्यिक और कलात्मक प्रश्न भी उत्पन्न करता है। 'नरेन्द्र कोहली की पौराणिकता में आधुनिकता की अवधारणा के संबंध में अभिज्ञा प्रस्तुत है।

पौराणिकता का स्वरूप

'पौराणिक' शब्द 'पुराण' में 'इक' प्रत्यय मिलने से बना है। 'पुराण' का शाब्दिक अर्थ–पुराना, प्राचीन, पुरातन है जिसकी संख्या विद्वानों के अनुसार अठारह है। पौराणिक दृष्टि का चिन्तन मानवीय धरातल को लेकर चलता है जबकि पाश्चात्य दृष्टिकोण आरंभ से आज तक अर्थ पर टिकी है। डॉ नरेन्द्र कोहली के अनुसार हमारे पुराणों में हमारा इतिहास, काव्य और अध्यात्म मिलता है। बीसवीं सदी के पश्चात् बदलते सामाजिक परिवेश के माध्यम से रचनाकारों की विचारधाराओं में अनेक परिवर्तन देखने को मिले। इन धारणाओं को ही आधुनिकता का विकसित रूप माना गया है।

पुराण एवं दर्शन

पुराण संख्या विद्वानों के अनुसार अठारह है। जिनके रचनाकार व्यास माने जाते है। 'दर्शन' शब्द द्वश धातु से बना है। द्वश का अर्थ है देखना। जब मानव अपने मन तथा हृदय के भीतर बैठकर बाहरी तथा अन्तर्चक्षु को मिलाकर देखता है, वही दर्शन कहलाता है। 'उपनिषद्'–अर्थात– यहाँ बैठो, बैठकर गुरु से सुनो। 'उपनिषद' वैदिक मंत्रों, ऋचाओं की व्याख्या कर हमें चिंतन के धरातल पर लाकर खड़ा कर, आत्मा को दिव्य चक्षु प्रदान करते है। अज्ञान के कारण चमत्कार को ही लोग ईश्वर समझ बैठते है। दर्शन का अर्थ चमत्कार ही प्राप्त करना नहीं, बल्कि दुःख की चरम निवृत्ति या परमानंद की प्राप्ति होना है। एक ही मार्ग के सब पथिक है। दर्शन के उपाय के लिए श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन को महत्व दिया गया है। साधना करते हुए जिस किसी का अंतःकरण परिशुद्ध हो जाए और उसमें पूर्ण श्रद्धा जन्म ले ले तो उसे उसी क्षण परमतत्व की प्राप्ति हो जाएगी।

उपनिषद् भारतीय ज्ञान का तथा दार्शनिक विचारधाराओं का मूल ग्रंथ है। उपनिषद् दार्शनिक ग्रंथ है। दर्शन की चर्चा में नीतियों का निर्माण देखने को मिलता है। दर्शन मनुष्य के चिन्तन को ऊर्ध्व

करता है तो नीतियाँ उसके जीवन को संयमित करती है। दर्शन न केवल आत्मा की शुद्धि का मार्ग बताता है वरन् कर्म में भी निश्चय पैदा करता है।

पौराणिकता : डॉ. नरेन्द्र कोहली का दृष्टिकोण

'पौराणिक' का अर्थ है पुराणों पर आधारित। पुराण वह होता है जिसमें महाकाल के बहुत बड़े लक्षण हों। कुछ लोग पुराने इतिहास को ही पुराण मानते हैं, वे भी पुराण हैं परन्तु सबसे बड़ी बात लेखक या कथाकार के रूप में मुझे लगती है वह यह है कि सारी विधायें जो देशकाल की दृष्टि से हमारे सामने, हमारे समाज में या हमारे देश में जो आज घटित हो रहा है हम उसी को लेकर चल रहे है। पुराण एक ऐसी विधा है जिसमें कि देशकाल की सीमा नहीं है। पुराण बहुत विराट रचना है। आज की सारी विधाओं की तुलना में अगर देखें तो एक–एक वाक्य में यही कहूँगा कि विराटता की दृष्टि से वो इनसे बहुत आगे है। पुराकथा को अनेक लोग पौराणिकता का पर्याय मानते है। डॉ. नरेन्द्र कोहली के अनुसार, ''पुराण–कथाएँ वस्तुतः हमारी पुराकथाएँ है, प्राचीन कथाएँ है अर्थात हमारा इतिहास है।''

अपनी उपन्यास श्रंखला 'अभ्युदय' तथा अपने उपन्यास 'महासमर' के माध्यम से डॉ. नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक चरित्रों को आधुनिक युग के प्रतिबिम्ब के रूप में उजागर किया है। पुराकथा को यथार्थ के धरातल पर लाने के लिए लेखक को कई स्थानों पर प्राचीन परम्पराओं व मिथकों को तोड़ना पड़ा है किन्तु उससे प्रमुख घटनाओं एवं पात्रों के चरित्र में तोड़–मरोड़ नहीं हुई बल्कि वे घटनाएँ और अधिक सजीव एवं सशक्त होकर प्रासंगिक हो उठीं तथा पात्रों का चरित्र अधिक प्रखरता से तर्कसंगत व बुद्धि ग्राह्य हो मुखर हुआ है।

डॉ. नरेन्द्र कोहली ने जीवन की परिवर्तनशीलता के साथ–साथ अतीत की मान्यताओं और परम्पराओं एवं जीर्ण–शीर्ण

मान्यताओं का खण्डन कर मानवीय जीवन–मूल्यों की महत्ता को स्थापित करने का प्रयास किया है।

डॉ. नरेन्द्र कोहली आधुनिक जीवन की व्यवस्था में सांस्कृतिक उत्थान के लिए महाभारत में तथा रामायण में स्थापित आदर्श की आवयश्कता से प्रेरित हो, युगीन विचार धारा के आलोक में परिवर्तित अतीत के माध्यम से सुधार का स्वरघोष करते प्रतीत् होते है लेखक जीवन को एक खण्ड के रूप में न देखकर संपूर्ण रूप में देखता है। इसी कारण जीवन के मूलसार को समझने तथा समस्याओं के समाधान के निराकरण के लिए उन्होने अतीत के महान ग्रंथों को माध्यम मानकर जीवन की सर्वांगता तथा जीवन की उत्कृष्टता बनाये रखने वाले आदर्श पात्रों को चुना और उन्ही पात्रों के माध्यम से आज की राजनीतिक, सामाजिक विसंगतियों पर प्रकाश डाला है।

डॉ. नरेन्द्र कोहली की परम्परा के प्रति अटूट आस्था है। इनके सृजन–चिन्तन में परम्परा और आधुनिकता के साथ–साथ दर्शन होते है। 'महासमर' तथा 'अभ्युदय' की कथाएँ भारतीय संस्कृति और भारतीय सभ्यता के प्राचीनतम ग्रंथों 'महाभारत' तथा 'रामायण' से ली गई है, जो परम्परा की अर्थवत्ता के प्रति रचनाकार के विश्वास को दृढ़ता प्रदान करती है। पौराणिक ग्रंथों के विषय में नरेन्द्र कोहली कहते है पुराणों और पौराणिक ग्रंथों में केवल इस जीवन को और अपने काल को ही सृष्टि की सीमा नहीं माना गया है।

उनके सम्मुख एक विराट सृष्टि है, असीम देश और काल इस जीवन के साथ ही सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता। अनंत लोक है और काल भी अनंत है। उसको समग्रता में देखने से ही जीवन की परख होती है। जो कुछ हमारे सामने घटित हो रहा है, उसका कारण कभी–कभी किसी और लोक या किसी और काल में घटित हुआ होता है। संसार में जन्म लेने का अर्थ है कि या तो हम कोई लक्ष्य लेकर आयें है अथवा अपने कर्मों का भोग करने आये है। वस्तुतः यह जीवन लंबी श्रृंखला की एक कड़ी मात्र है। जब तक हम इस सृष्टि को

इसकी समग्रता में नहीं देखेंगें, तब तक न हम इस जीवन का रूप समझ पाएँगे, न अपना स्वरूप। आवश्यक यह है कि हम अपना स्वरूप समझें। अपनी यात्रा के आरम्भ को देखें और जीवात्मा की सफलता इसी में है कि वह अपने स्वरूप को समझें और माया के भ्रमों और बंधनों से मुक्त हो जाये। वापस वहीं पहुँच जाएँ जहाँ से वह चला था।[1] उपन्यास की कथाओं के लिए लेखक ने अपने समाज और पुराकथाओं दोनों को ही कथा–स्रोत के रूप में चुना है। लेखक का मानना है कि न तो प्रकृति बदलती है और न ही मनुष्य का स्वभाव, इसलिए पुराण हमसे अलग नहीं हो पाते, ''ऐतिहासिक क्रम से तो यही कहा जाएगा कि पहले मैंने अपने परिवार को देखा, फिर समाज को, फिर राष्ट्र को। पहले वर्तमान को देखा, फिर अपने इतिहास और पुराण को। पहले समाचार–पत्र को पढ़ा और फिर अपने निकट–अतीत से लेकर सुदूर–अतीत की कृतियों तक को। मेरा अनुभव यह है कि जीवन को कालखण्डों में बाँटकर देखना खण्ड–सत्य की प्रतिष्ठा करना है। जीवन अजस्र और अनवरत है। आज का समाचार–पत्र जिस जीवन की चर्चा करता है, उसी जीवन की चिंता व्यास और बाल्मीकि ने भी की है। प्रकृति के नियम वे ही हैं, मनुष्य का स्वभाव और प्रकृति भी वही है, अन्तर केवल इतना है कि वाल्मीकि और व्यास ने जीवन को उसकी समग्रता में देखा है और उसके संबंध में गहराई से सोचा है। यही कारण है कि वे उसके वास्तविक और यथार्थ रूप के साथ उसके सत्य और उदात्त रूप को भी देख पाये। कोई कारण नहीं है कि भूगोल और इतिहास के खण्ड कर दें और स्वयं को द्रष्टा मानते हुए भी एक छोटे कालखण्ड में काराबद्ध हो जायें। इसलिए मैं मानता हूँ कि कोई लेखक अपने वर्तमान से मुक्त नहीं हो सकता, किन्तु अपने वर्तमान का बंदी होकर रह जाना भी कोई आदर्श स्थिति नहीं है।

---

[1] विवेकी राय, नरेन्द्र कोहली : अप्रतिम कथा यात्री, वाणी प्रकाषन 2003, पृ0सं0 83

लेखक पौराणिक कथाओं के पुनर्लेखन का उद्देश्य 'स्वान्तः सुखाय' मानते हैं जिसमें लेखक का आत्मिक विकास उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। लेखक के अनुसार प्रख्यात कथाओं को लेकर लिखने वाला लेखक भी समकालीन जीवन का ही लेखन कर रहा होता है। अंतर सिर्फ यह है कि वह उन पात्रों और उन घटनाओं के प्रति लोगों के मन में जो मान्यता पहले से ही व्याप्त है उसका लाभ उठाना चाह रहा है।[1] निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लेखक का मत है कि कुछ चीजें शाश्वत होती है। काल का प्रवाह निरंतर–अखण्ड है। प्रकृति के नियम अटल है। हमारे पौराणिक ग्रंथों के शाश्वत मूल्य न कभी बदलें जा सकते है, न कभी वे अनावश्यक होंगे और न ही अप्रासंगिक। आज का वैज्ञानिक युग हमें पौराणिक कथाओं के और निकट लाकर खड़ा कर देता है। विज्ञान के सारे चमत्कार हमें पौराणिकता की ओर ही ले जाएँगे। हमारे देश की जनता पौराणिक उपन्यासों के माध्यम से अपनी संस्कृति से संपृक्त हो उसमें से कुछ प्राप्त करना चाहती है; ज्ञान–पिपासा मिटाना चाहती है। यह सुखद आश्चर्य है कि इन कथाओं पर शोध–कार्य भारतीय विश्वविद्यालयों के साथ–साथ विदेशी विद्यालयों में भी हो रहा है।

आधुनिकता की अवधारण

'आधुनिकता' क्या है और उसके मुख्य लक्षण क्या है, उसका दो टूक और सर्वमान्य उत्तर दे पाना तो कठिन है, लेकिन उसे समझना आवश्यक है।

आधुनिकता आधुनिक काल सापेक्ष है। अपनी कालवाचकता में आधुनिक, प्राचीन और मध्यकालीन से भिन्न, वर्त्तमान या आधुनिक काल का बोध है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि आधुनिक काल में या वर्त्तमान में जीवित हर व्यक्ति आधुनिक है या उसका बोध आधुनिक है। आधुनिकता भारत के मध्यकालीन स्तब्धवृत्तिक समाज की

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली मेरे साक्षात्कार, किताब घर प्रकाशन, 2008 पृ0सं0 – 153

पश्चिम के साथ टकराहट का परिणाम है। हमारे देश में पश्चिम मुख्यतः अँग्रेजों के पहले व्यापारियों के रूप में और बाद में शासकों के आगमन के रूप में साथ आया, जिसे हमने 'नव जागरण' का नाम दिया। हम जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी लगभग जड़ हो गयी परम्पराओं में जकड़े हुए–स्थिर थें, एक झटके के साथ जाग उठे–यही थी आधुनिकता की प्रक्रिया।

कुछ लोग यह भी मानते है कि आधुनिकता का प्रथम विस्फोट धर्म और अध्यात्म के क्षेत्रों में हुआ था जो आधुनिकता को समझने में आज भी सहायक हो सकता है। पर, इस अर्थ–संदर्भ तक आधुनिकता को सीमित नहीं किया जा सकता, भले ही यह आधुनिकता के लिए आवश्यक संदर्भ और पीठिका है। यह सही है कि शुरू–शुरू में धर्म और आध्यात्म से इसकी सीधी टकराहट हुई थी। वैज्ञानिक दृष्टि से प्रेरित और परिचालित होने के कारण आधुनिकता ने धर्म और अध्यात्म की तानाशाही को जबदस्त चुनौती दी थी तथा इनसे जुड़ी स्वीकृत मान्यताओं–मर्यादाओं के आगे प्रश्न–चिह्न लगाने शुरू किये थे। आधुनिकता एक प्रश्नाकूल मानसिकता है जो हर बँधी–बँधायी मानसिकता वाली व्यवस्था या मर्यादा या धारणा को तोड़ती है। इसे चरम या निरपेक्ष नहीं माना जा सकता। यह मुख्य रूप से एक ऐसी मानसिकता है जो किसी एक मूल्य, धारणा या सिद्धांत को स्वीकारने से पूर्व, उसे जाँचने पड़तालने पर बल देती है। यह मानसिकता मानव–स्वभाव की जटिलता और उसके कारण बनते–बिगड़ते सम्बन्धों और संवेदनाओं से जुड़ी है।

आधुनिकता को नितान्त आत्मनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ माना जाता है और इसे आधुनिकता की एक मुख्य विशेषता के रूप में प्रतिपादित भी किया जाता है। आधुनिकता की इस धारणा से प्रेरित साहित्य में व्यक्ति–मन का विश्लेषण अधिक रहता है।

आधुनिकता को खंडों में विभाजित करके नहीं समझा जा सकता। एक ढंग का आधुनिक– बोध मानवीकृत है और दूसरे ढंग का

अवमानवीकृत, यह वर्गीकृत, यह वर्गीकृत आरोपित दृष्टि का परिणाम है। यथार्थ या अयथार्थ, वास्तविक या अवास्तविक, सही या गलत के लेबल आधुनिकता पर नहीं चिपकाये जा सकते। यह कोई ठोस अचल पदार्थ नहीं, जिसे टुकड़ों में बाँटा जा सके। यह एक संलिष्ट व्यापार है जिसमें अनेक गुण, अनेक विशेषताएँ अनेक प्रवृत्तियाँ विरोधात्मक स्थिति में, एक साथ विद्यमान रह सकती है। आधुनिकता की निरन्तर विकासमान प्रकृति में नए रूपों की खोज का सिलसिला जारी रहता है। आधुनिक चेतना अपने लिए नयी भाषा और नए शिल्प की तलाश करती है।

आधुनिकता समकालीन का पर्याय नहीं है। समकालीन संदर्भ को लेकर लिखी गई हर रचना आधुनिक हो ही, यह जरूरी नहीं है। आधुनिक बोध से संयुक्त हर रचना समकालीन संदर्भों से अनिवार्यतः जुड़ी रहती है।

वैज्ञानिक शोधों में पश्चिमी देशों की उपलब्धियाँ मुख्य रूप से प्रतिफलित हुई, इसलिए आधुनिकता की प्रक्रिया वहीं से शुरू हुई। भारतीय समाज में पश्चिमी देशों की सभी वस्तुओं–उपभोग की सामग्रियों, साहित्य, कला, संस्कृति का शिकार हो जाते है। यह उनके स्त्री–संबंधी विचारों से स्पष्ट है।

हिन्दी का इतिहास गवाह है कि किस प्रकार हिन्दी–उपन्यास ने अपनी अब तक की लगभग सवा सौ वर्षों की यात्रा में आधुनिकता की प्रक्रिया को पूरी तरह आत्मसात किया है और उसे विवेकपूर्ण अभिव्यक्ति दी है।

हिन्दी–साहित्य में दोनों प्रकार से आधुनिकता की झलक मिलती है, समाज में फैली आधुनिकता और लेखकों द्वारा उपन्यास–शिल्प में अपनाई गई आधुनिकता।

विगत् दशकों में पुराकथाओं को आधार बनाकर भी आधुनिक ढंग के उपन्यास लिखे गये है। ऐसे उपन्यासकारों में डॉ. नरेन्द्र कोहली प्रमुख है। डॉ. नरेन्द्र कोहली प्राचीन कथाओं के अतिप्राकृतिक

तत्वों की तर्कसंगत व्याख्या और तदनुरूप उनका अनुकूलन करने में अपनी सृजनात्मक क्षमता का परिचय देते है। साथ ही पुराकथाओं के माध्यम से अपनी आधुनिक संवेदनाओं को व्यक्त करने में भी उन्हे अच्छी सफलता मिली है।

आधुनिकता : डॉ. नरेन्द्र कोहली का दृष्टिकोण

"प्रायः लोग नवीनता को आधुनिकता मानते हैं, मैं नही मानता। जो कुछ नया है व आधुनिक भी हो, आवश्यक नहीं। क्योंकि... ..पुराना भी पलटकर आ सकता है, लौटकर आ सकता है। नया है तो उसका उत्कृष्ट होना जरूरी नहीं वह पहले से निकृष्ट भी हो सकता है, विकास की जगह पतन की ओर भी जा सकता है। ....मैं मानता हूँ कि आधुनिकता का मतलब यह है कि आपको हर एक चीज–व्यक्तित्व, घटनाएँ व सिद्धांतों से, जो परम्परा से अब तक आपके पास आई, उनको बुद्धि की तर्क की कसौटी पर कसके उसकी सार्थकता को बढ़ाए, यह आधुनिकता है। ....लेकिन परम्परा को नष्ट करने का प्रश्न नहीं होता, बल्कि उसमें से सार्थक चीजों को चुन लिया जाये और निरर्थक को छोड़ दिया जाये। जो रूढ़ी हो चुकी हैं वे जड़ हो चुकी है, जो परम्पराएँ रूढ़ि–भंजन का काम करें वही आधुनिकता है और मैं आधुनिकता का अर्थ इसी रूप में लेता हूँ कि हर पुरानी चीज को फिर से नया बनाया जाए। उस पर एक प्रश्न चिह्न लगाया जाए, उसकी परख की जाए, उसका विरोध करना जरूरी नहीं है, उसे परख कर स्वीकार भी किया जा सकता है, अंगीकार भी किया जा सकता है। यदि उसका तिरस्कार ही करना है तो वह बुद्धि व तर्क के आधार पर होना चाहिए। कोई चीज पुरानी चली आ रही है इसलिए उसे मान लिया जा सकता है परन्तु चली आ रही हर चीज का तिरस्कार कर दें यह भी मूर्खता है। इसलिए आधुनिकता का अर्थ है, परखना, परिश्रम करना, नवीन तथ्यों की पुराने तथ्यों के आधार पर खोज करना, कसौटी पर कसना और जो ठीक लगे उसे स्वीकार

करना और जो ठीक न लगे उसे छोड़ देना या उसका तिरस्कार करना। आधुनिकता का अर्थ यही है–''विवेक की कसौटी पर पुराने तथ्यों को तौल कर उन्हे समकालीन संदर्भों में उपयोगी बनाया जाये।''

नया युग आ गया तो क्या मनुष्य का स्वभाव बदल गया ? जो प्राचीन काल में काम, क्रोध, लोभ था वे आज भी मनुष्य के स्वभाव में ज्यों का त्यों है, इसलिए इन चीजों में बहुत ज्यादा जल्दी निष्कर्ष नहीं निकालने चाहिए, बल्कि उनकी तह तक जाकर देखना चाहिए।[1] डॉ. नरेन्द्र कोहली मानते है कि परम्परा का अर्थ होता है जो अनावश्यक है उसे छोड़ दिया जाए। परम्परा और आधुनिकता को लेकर जो द्वन्द्व मेरे मन में आये, जिनता मैंने सोचा, जितनी चिंता की जितना सिर टकराया, उससे पाया कि आधुनिकता और परम्परा में कोई विशेष अन्तर नहीं है।[2] अपने चिंतन में डॉ. नरेन्द्र कोहली ऐसे चिंतक है जिनका धरातल सामान्य मानव की प्रक्रियाओं, समस्याओं संघर्ष पर निर्मित है। उनके पात्र संघर्ष के सीधे मार्ग पर चलकर मानव–पीढ़ी के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करते है। यथार्थ की पहचान कर उनके पौराणिक पात्र आगे बढ़ते है। लेखक के चिंतन–मनन और संघर्ष में पाठक अपनी समस्याओं का समाधान पाता है। पाठकों के स्तर, उनकी मान्यताओं उनके चिंतन के स्तर पर पहुँचकर उन्होंने कथ्य को संप्रेषित किया है।

आधुनिकता और परम्परा में लेखक कोई विशेष अंतर नहीं मानता, 'वेदों से लेकर आजतक हम एक परम्परा की श्रंखला में बँधे हुए आये हैं, इसलिए मुझे नहीं लगता कि हमें अपनी परम्परा को अनावश्यक, अनुपयोगी, पुरानी या दकियानूसी कुछ भी मानने की जरूरत है। हमारी परम्परा संसार की श्रेष्ठतम परम्पराओं में से एक है। आज भी वह अपने स्थान पर खड़ी है, उसकी एक भी बात गलत

---

1 डॉ0 नरेन्द्र कोहली से हुई बात–चीत का अंश (24.04.2010)

2 डॉ0 नरेन्द्र कोहली के भाषण का अंष (दिल्ली विष्वविद्यालय) (18.12.2004)

प्रमाणित करना अत्यंत कठिन ही नहीं असंभव है।[1] आधुनिकता के नाम पर अपनी परम्परा को नकार कर जिस भौतिकता या जिस संकीर्णता को आधुनिकता कह कर गौरान्वित किया जाता है, उसे लेखक किसी काम की चीज नहीं मानता, डॉ. नरेन्द्र कोहली न तो तथाकथित आधुनिक हैं और न ही उत्तर–आधुनिक। आलोचना में 'आधुनिकता' और 'उत्तर आधुनिकता' के संकट से आलोचक चिंतित हो सकते हैं, किंतु नेरन्द्र कोहली ने रचनाकार के वास्तविक किया है।[2] साहित्य की समृद्धि तथा समाज की प्रगति में डॉ. नरेन्द्र कोहली का योगदान प्रत्यक्ष है। उन्होने प्रख्यात कथाएँ लिखी है किन्तु वे सर्वथा धर्म को निभाते हुए अपना कार्य मौलिक हैं, आधुनिक हैं, वे पश्चिम का अनुकरण नहीं करते। भारतीयता की जड़ों तक पहुँचते है। किन्तु पुरातन पंथी नहीं है।[3] डॉ. कोहली के सुगठित चिंतन, मनन ने पुराकथाओं को मथकर उनमें से मानवीय मूल्यों का आधुनिक संदर्भों में निर्माण किया है।

नरेन्द्र कोहली का पौराणिक आधुनिकतावाद

संसार जानता है कि भारत का महान संस्कृत आदिकाव्य 'रामायण' जिसके लेखक या संपादक महर्षि बाल्मीकि माने जाते हैं, विविध लोक साहित्य तथा धार्मिक परम्पराओं के पारस्परिक प्रभाव का परिणाम बनकर अपना यह रूप ग्रहण कर चुका था जो आज सर्व प्रसिद्ध है।[4] अपने इतिहास के प्रारम्भिक चरणों से आज तक 'रामायण' के असंख्य सम्पादन, विभिन्न भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद, रूपान्तर, पुनर्विचार तथा पुनर्निमाण हुए है। ऐसा लगता है कि राम

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली के भाषण का अंष (दिल्ली विष्वविद्यालय) (18.12.2004)
[2] अवनीजेष अवस्थी (संकलित) युद्ध के कगार पर खड़ा है महासमर, आधुनिक जीवन के व्याख्याता, नरेन्द्री कोहली, सन् 1991, वाणी प्रकाषन, दिल्ली
[3] डॉ0 नरेन्द्र कोहली के विषय में, प्रथम संस्करण – 2000, पृ0सं0 6–7
[4] Ed.Paula Richman, Discovery of Ramayana Tradition 1991, Pg.No.13&16

कथा रचित और प्रसारित करके महर्षि वाल्मीकि तथा अन्य प्राचीन कवियों ने आने वाली पीढ़ियों के लेखकों, कथाकारों, नाटककारों, अनुवादकों, कलाकारों, विचारकों, धार्मिक एवं सामाजिक सुधारकों तथा विद्वानों को चिंतन–मनन और रचनाकार्य का अमूल्य और अनन्त अवसर दे रखा है। रूपान्तरों की यह खण्ड परम्परा 'रामायण' की अद्वितीयता का प्रमाण है। अन्य देशों के प्राचीन महाकाव्य, जैसे होमेर के इलियाड' तथा 'ओडिस्सेय' या बाबिल वाला 'गिल्गमेश' या सैक्सन 'बेओवुलफ' इत्यादि। संगमरमर की मूर्तियाँ बनकर जड़ हो चुके है। सदियों के अन्तराल में उनपर न कोई पुनर्विचार हुआ। और न ही लोकजीवन पर कोई विशेष प्रभाव पड़ा। 'रामायण' ही आज तक भारतवासियों (न केवल हिन्दुओं बल्कि सभी संप्रदायों) के मन और साधारण जीवन में सजीव तथा अमर है। उसके प्रमुख पात्र तो जैसे प्रत्येक भारतीय के सगे–संबंधी है। इतिहास के विभिन्न युगों तथा भारत के विभिन्न प्रदेषों में रचित 'रामायण' के सभी रूपान्तरों तथा अनुवादों का विश्लेषण इस छोटे से लेख में तो दूर, एक मोटे ग्रंथ में भी असंभव होगे। उन रूपान्तरों तथा अनुवादों के वर्गीकरण अनेक प्रकार के हो सकते है।

भाषा–प्रदेश–संस्कृति की दृष्टि से वे संस्कृत तथा देशीय माने जा सकते है। संस्कृति तथा मानवशास्त्र के विद्वानों के अनुसार रामकथाएँ मौखिक (लोक–साहित्यिक) और लिखित (साहित्यिक) हो सकती है। ऐसा वर्गीकरण तो बस कृतिम ही है, सभी लिखित रामकथाएँ मौखिक लोक–साहित्य से आई हैं, मौखिक रामकथाओं पर भी लिखित साहित्यिक रामकथाओं का प्रभाव पड़ा था। धर्म–सम्प्रदाय की दृष्टि से वे हिन्दुओं के अनेक सम्प्रदायों, जैनों, बौद्ध धर्मियों, सिक्खों तथा मुसलमानों की धाराएँ है। जहाँ तक इतिहास की बात है तो 'रामकथाएँ' प्राचीन 'मध्यकालीन' उपनिवेशकालीन तथा आधुनिक युग में विभाजित की जा सकती है। एक और वर्गीकरण हो सकता है, लेखक और उसके श्रोताओं तथा पाठकों के विशेष सामाजिक, धार्मिक

या दार्शनिक उद्देश्यों के अनुसार। एक उद्देश्य वाल्मीकीय 'रामायण' को हर किसी प्रदेश की भाषा, जीवन–शैली और संस्कृति के अनुरूप बनाना था। तमिल महाकवि कंबन से लेकर भारत के हर क्षेत्र के कवियों ने न केवल 'रामायण' को अपनी–अपनी भाषाओं में अनुवादित किया था बल्कि उस महाकाव्य के सभी नायक–नायिकाओं को अपने प्रदेश के निवासी के रूप में चित्रित किया। अयोध्या पंचवटी या लंका जैसे स्थान भी 'तमिलनाडु' बंगाल अथवा मैसूर का रूप ग्रहण करते रहे। दूसरा उद्देश्य 'रामायण' को समाज में कोई नैतिक गुणों और मान्यताओं इत्यादि को स्थापित करने या. उनकी रक्षा करने का साधन बनाना था। मध्यकालीन समाज से लेकर अब तक अनेक लोगों का मत यह है कि समय गुजरने के साथ–साथ मनुष्यों की प्रकृति बिगड़ती जाती है। उस प्रकृति को सुधरने के लिए लोगों को प्राचीन काल के वीर पुरुषों और पतिव्रता नारियों की याद दिलानी चाहिए। इस प्रकार बाल्मीकिय रामायण और उसके असंख्य रूपान्तर, समाज में परंपरागत मान्यताओं की सुरक्षा या पुनर्स्थापना करने का एक शक्तिशाली आयुध बने थे। किसी हद तक टी. वी. के धारावाहिक, विशेषकर 'सागर आर्ट्स' द्वारा उत्पादित दोनों 'रामायण' आधुनिक समाज को हिन्दू धर्म की मौलिक मान्यताएँ और परम्पराएँ समझाने के उद्देश्य से बने होंगे।

अनेक चिंतकों, गुरूओं तथा धर्म–सुधार प्रचारकों ने अपने–अपने उद्देश्यों को लेकर रामायण में परिवर्तन भी किया था। विशेषकर भक्त संत कवि लोग इस कार्य में संलग्न थे। उन्होंने ही राम के दिव्य अस्तित्व पर जोर दिया था जो मौलिक कथा में नहीं था। बाल्मीकिय रामायण के अंत तक भी राम एक पुरुष ही बने रहते है। वे सभी मानव–भावनाओं, दुखों, वेदनाओं इत्यादि का अनुभव कर लेते है। और सभी मित्र व शत्रु उन्हे मनुष्य ही मानते है। गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' से इसके विपरीत धारा आरम्भ हुई। आरम्भ से ही पाठकों को पता है कि राम भगवान विष्णु नारायण हैं,

उनके सभी दुख और जोखिम बस लीलाएँ ही है, यहाँ तक कि राक्षस भी उनके हाथों मरकर मुक्ति पाने को तड़प रहे है।[1] रामायण के रूपान्तर करनेवाले अनेक लेखक उस महान् काव्य के माध्यम से सामाजिक सुधार, देशभक्ति आदि जैसे सिद्धांतों का प्रचार करते थे और पात्रों के उन कार्यों को परिवर्तित कर देते थे, जो उन सुधारवादी विचारों या लेखक की निजी मान्यताओं के प्रतिकूल लगते थे। तीसरी और पाँचवी सदी ईसवी के बीच रहने वाले महान् नाटककार भास को यह असहज लगा होगा कि सीता स्वर्ण मृग को प्राप्त करने का इतना हठ करें और राम अपनी पत्नी की सनक से ही सब कुछ छोड़–छाड़कर तथा लक्ष्मण की चेतावनी को अनसुना करके मृग के पीछे भाग खड़े हों। इसी लिए उन्होने स्वर्ण–मृग की सारी कथा बदल दी थी कि राम अपने स्वर्गीय पिता का श्राद्ध–तर्पण करने को आतुर थे, उन्होने तपस्वी–वेश में आये हुए रावण से मंत्रणा पूछी तो रावण ने ही उन्हे स्वर्ण–मृग की बली चढ़ाने का आदेश दिया था। तो अचानक स्वर्ण–मृग–रूपी मारीच को सामने देखकर ही राम उसके पीछे भाग निकले थे।[2] महाकवि कंबन राम को सूर्पनखा का नाक कटवाने के दोष से मुक्त करना चाहते थे, इसी लिए उन्होने यह काम लक्ष्मण से राम की अनुपस्थिति में ही करवाया था।[3]

तुलसीदास के काव्य में सीता का न हरण हुआ था और न अग्नि–परीक्षा, राम ने तो अपनी लीला से सीता के माया–प्रतिरूप का हरण और अग्निपरीक्षा करवाए, सीता निष्कासन की बात तो उठी ही नहीं। उसी तरह रामायण पर आधारित आधुनिक टी. वी. धारावाहिको में भी प्रजा के झूठे आरोपों से पीड़ित सीता स्वेच्छा से, राम के न चाहने पर भी, वन जाती है। इसका उद्देश्य शायद राम और रामकथा

---

[1] सं0 श्याम सुन्दर दास, गोस्वामी तुलसी दास कृत 'रामचरित मानस' इलाहाबाद–259–287

[2] Tr. A.C. Woolner and Lakshman Sarup ,Thirteen plays of Bhasha : - 1985

[3] Ed. Paula Richman, Many Ramanays : The Discovery of a Narratiue Traditian in south Asia, Pg.No. 72 & 75

को उन कठोर आलोचकों से बचाना है जो इस प्राचीन कथा के नायक पर आधुनिक विचारों के अनुसार अन्याय, क्रूरता और स्त्री–दमन का आरोप लगाते है। कभी–कभी रामायण को देशभक्तिपूर्ण या क्रांतिकारी बनाने की आतुरता में लेखक लोग सारी कथा को नष्ट या उलट–पुलट करते थे। उदाहरणार्थ बंगाली कवि माइकल मधुसूदन दत्त के मेघनाथ वध काव्य में मेघनाथ एक उदार देशभक्त और राम एक क्रूर आक्रमणकर्ता बन गये थे तेलुगु लेखक गुडिपा टी वेंकटाचलम के सीता–अग्नि–प्रवेश नामक नाटक में अपने प्रति राम के अविश्वास से अपमानित सीता रावण की चिंता में प्रवेश कर बैठती है। इस तरह प्रगतिशील सामाजिक विचारों को जनता तक पहुँचाने के लिए रामायण पर अनेक अत्याचार हुए, जो रावण के अत्याचारों से किसी भी प्रकार कम नहीं थे।

नरेन्द्र कोहली का 'अभ्युदय' नामक उपन्यास यह प्रमाणित करता है। कि बाल्मीकिय रामायण का पूरा सम्मान करते हुए भी एक आधुनिक लेखक इस पौराणिक कथा को आधुनिक तथा प्रगतिशील बना सकता है। इसमें कोहली जी ने अपनी रचनात्मक क्षमता और अपने ऐतिहासिक अंतर्बोध का परिचय दिया है।

अभ्युदय की विशेषता यह है कि लेखक ने एक पौराणिक कथा को यथार्थवादी वातावरण में बसाया है। इतिहास के विद्यार्थियों को अच्छी तरह मालूम है कि बाल्मीकिय रामायण में आर्य राजाओं का दक्षिण की ओर विस्तार और आर्येत्तर राज्यों के साथ मैत्री तथा संघर्ष प्रतिबिंबित है।सम्पूर्ण ऐतिहासिक सत्य के अनुकूल उन्होने अपने उपन्यास में आर्यों तथा आर्येत्तर जातियों के संबंध बहुरूपी बनाकर दिखाया था। राम या जनक जैसे दूरदर्शी आर्य शासक या अगस्त्य तथा विश्वामित्र जैसे प्रगतिशील ऋषि आर्येत्तर जातियों के प्रति मित्र–भाव रखते थे, जब कि ऋषि वशिष्ठ या आर्य यूथपति प्रवीर जैसे लोग आर्येत्तर जातियों को हीन, भ्रष्ट और शत्रु मानते थे। आर्येत्तर यूथ बाल्मीकिय रामायण में वानरों, गृध्रों और भालुओं के रूप में उपस्थित

है।[1] उन्ही ऐतिहासिक तत्वों के आधार पर कोहली जी ने पौराणिक कथा को ऐतिहासिक बनाया है। हनुमान, सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जटायु आदि जैसे पात्रों को पशु से व्यक्तिगत चरित्र संपन्न मनुष्य बनाया गया है। वैसे भी सब रामकथाओं में वानर–भालू पशु–रूपी मनुष्य होते ही है, जिनकी पशु–प्रकृति से केवल उनकी पूँछे ही कथा में काम आती है, तो उन लोगों को वास्तविक हनुमान की पूँछ चाहिए हो तो राक्षस लोग अपने क्रूर मनोरंजन के लिए उन्हे मनुष्य बनाना स्वाभाविक ही था और अगर लंका जला डालने के लिए वानर रूप देकर पूँछ क्यों न लगवा दें। इसी प्रकार देव, यक्ष, गंधर्व इत्यादि भी कोहली जी के उपन्यास में मनुष्य ही बन गये है। देव–देवियाँ विशेष 'महाशक्तियों के प्रतिनिधि शासक बन गये है, जिन्होने अपने विलास और अबाध भोग में कमजोर और निकम्मे होकर रावण के सामने समर्पण किया था और राम–रावण संघर्ष को केवल दूर से देखते–देखते कभी–कभी सत्य पक्ष को कभी–कभी छोटी–मोटी सहायता देने का साहस किया था। कथा के नायक 'राम' भी कोहली जी के उपन्यास में राम नहीं मानव है। जिनके विकट जोखिमों के भरपूर संघर्षरत जीवन में सहे मानसिक और शारीरिक कष्ट 'लीलाएँ' थोडी ही है। अपने सब पात्रों को मानव रूप देकर कोहली जी ने सारी कहानी को जीवन्त भाव दे रखा है। रामायण के सभी पात्र अब काल्पनिक जगत में नहीं, एक यथार्थवादी ऐतिहासिक समाज में रहने लगे है।

इस यथार्यवाद को बनाये रखने और सभी काल्पनिक तत्व हटाने की जो रचनात्मक क्षमता कोहली जी ने दिखाई है, वह सचमुच प्रशंसनीय है। 'अभ्युदय' में हनुमान भारत और लंका के बीच का सागर उड़कर नहीं तैरकर पार करते है, जो किसी सक्षम तैराक के लिए असंभव नहीं है। सर्प विष में सने बाणों के घायल राम–लक्ष्मण

---

[1] F.E. Pargiter, Anciant Indian Historical Tradition, (1922) Pg. No. 277-278

को यातनापूर्ण मृत्यु से विष्णु–वाहक गरूण नहीं बल्कि गरूण नाम का वैध बचाता है। दिव्यास्त्र, अग्निबाण आदि शिला प्रक्षेपक या अग्नि प्रक्षेपक यंत्र बन जाते हैं जो भारत और अन्य प्राचीन राज्यों में प्रचलित थे। लंका तक पहुँचने का मार्ग राम किसी दिव्य सहायता से नहीं, अपने शुभचिंतक स्थानीय मछुआरों के सागर ज्ञान और अपने सैनिकों के विकट परिश्रम से तैयार करवाते है।

जब किसी पौराणिक घटना को यथार्थ का रूप देना मुश्किल होता है तो उपन्यास में रूपक का प्रयोग किया जाता है। पति–परित्यक्त अहल्या शिला नहीं बनती, मानव समाज से बहिष्कृत होकर एकांत साधना में शिलावत् बैठे–बैठे मुक्ति की प्रतीक्षा करती है। औषधिय बूटियों का बड़ा गट्ठर लाने वाले हनुमान को सुग्रीव कहते है कि –''तुम औषधियों का पहाड़ ही उठा लाए। रामकथाओं से परिचित कोई भी पाठक इन वाक्यों का अर्थ सुविधा से समझ सकता है। रावण की बंदिनी के रूप में सहे सीता के कष्टों को 'राम' अग्नि–परीक्षा कहते हैं तो असली अग्नि–परीक्षा अनावश्यक तथा राम के चरित्र के प्रतिकूल बन जाती है। ऐसा लगता है कि मुख्य नायक राम के चरित्र में कोहली जी बाल्मीकि का अनुसरण करते है, पर यह ठीक नहीं है। हाँ, बाल्मीकि रचित राम जैसे कोहली जी के राम भी एक आदर्श मानव है–आदर्श पुत्र, भाई, मित्र और पति, आदर्श योद्धा और सेनानायक है।[1] उनकी उदारता, वीरता, त्याग और बलिदान, संगठन–क्षमता, समता और न्याय अद्वितीय है। पर कोहली जी ने उनके चरित्र के निर्माण में कुछ नये गणों का भी सम्मिश्रण किया है जो पूर्व के किसी राम में नहीं थे। उनके राम भगवान नहीं, राजा नहीं, एक सामाजवादी जन–नेता है। बाल्मीकि रामायण से लेकर आज की टी.वी. रामायणों तक राम केवल ऋषियों की रक्षा करते रहते थे। कोहली जी के राम राक्षसों द्वारा शोषित आर्येत्तर जातियों, दासों और

---

[1] Brockington. J.L., Rightious Rama. The Evolution of an epic.

श्रमिकों को मुक्त कराते है, तथा उनके पिछड़े समाज में मौलिक परिवर्तन कर देते है। ये परिवर्तन आर्थिक भी है और विशेषकर सामाजिक भी। उत्पादन के साधनों को सामाजिक संपत्ति बनाना, सारे लोकतंत्र के सिद्धान्तों पर आधारित करना, स्त्रियों और पुरूषों को समान अधिकार देना, हर श्रमिक को शोषण से बचाकर सही रोजगार, वेतन, आवास, शिक्षा और चिकित्सा का अवसर दिलाना कोहली जी के राम का यह कार्यक्रम हर आधुनिक समाजवादी या साम्यवादी पार्टी का कार्यक्रम और आज के करोड़ों श्रमजीवी लोगों की सुनहरी कल्पना है।

हाँ, कोहली जी ने अपने राम के माध्यम से वे विचार प्रस्तुत किए हैं, जो न केवल प्राचीन समाज के युग–पुरूषों के नहीं थे बल्कि आज भी गिने–चुने उदार और प्रगतिशील लोगों को ही स्वीकार्य है। फिर भी मुझे इसमें न कोई भूल दिखती है न दोष। यथार्थवाद का अर्थ यह नहीं है कि लेखक किसी युग, घटना या व्यक्ति की फोटो कॉपी बनाए। साहित्य के विश्व इतिहास में यह तो एक मामूली बात है कि लेखक लोग लोकप्रिय ऐतिहासिक पात्रों के मुख से ही अपने विचार पाठकों तक पहुँचाते है। कोहली जी के जनवादी सिद्धांत उनके राम के जनवादी विचारों और व्यवहार से स्पष्ट दिखाई देते है। सीता और लक्ष्मण के साथ वे अपने वनवास में आम जनता का साधारण जीवन सहज रूप से जी रहे है। राम के जनवादी, प्रगतिशील, न्यायप्रिय तथा उदार चरित्र के जो मनोवैज्ञानिक आधार कोहली जी ने अपने उपन्यास में दिखाए है, वे उल्लेखनीय है। राम का यह चरित्र जन्मसिद्ध या न्यायप्रिय तथा उदार चरित्र के जो मनोवैज्ञानिक आधार कोहली जी ने अपने उपन्यास में दिखाए है, वे उल्लेखनीय है। राम का यह चरित्र जन्मसिद्ध दिव्य प्रदत्त नहीं है, उसका विकास विभिन्न परिस्थितियों के प्रभाव का परिणाम है। बचपन से ही वे अपने परिवार में अपने और अपने पति–उपेक्षिता माता के प्रति अन्याय का अनुभव करते रहे है और उसका विरोध करना सीखते रहे है। पर आरम्भ में

उन्हे लगता था कि विश्व का अधर्म और अत्याचार किसी राजा की न्यायोचित नीति से मिटाया जा सकता है। लेकिन जब दूरदर्शी ऋषि विश्वामित्र ने उन्हे शोषण और जन–उत्पीड़न का अथाह सागर दिखाया, तो राम की समझ में आया कि इस विश्वव्यापी अत्याचार को केवल सार्वजनिक सशस्त्र आन्दोलन ही समाप्त कर सकता है। कैकेयी को दिए गये पिता के वरदान को एक सुअवसर मानकर वे सारी राजसी औपचारिकताओं से मुक्त होकर वन जाते हैं और दीन–हीन पीड़ितों को आत्मसम्मान तथा संघर्ष–शक्ति के साथ शस्त्र–ज्ञान देकर वीर सैनिक बनाते है। सीता–मुक्ति इस जनयुद्ध का तो एक बहाना मात्र बन जाता है। सीता–हरण न भी हुआ होता तो रावण विरोधी जन युद्ध अनिवार्य था। हर गाँव, जहाँ से राक्षसों ने स्त्रियों का हरण किया था, जहाँ के बच्चों को उन्होने या तो भूखों मरवाया था या दास बनाया था, राम की सेना की एक टुकड़ी बन जाता है। आज एक बहुचर्चित समस्या है कि परम्परा और आधुनिकता के क्या–क्या सम्बन्ध होते है। बहुत से लोगों का मत हैं कि आज की संस्कृति में परम्परा केवल रूढ़ तथा प्रतिक्रिया वादी हो सकती है।

सचमुच समाज में जाति–भेद, धार्मिक मतान्धता, साम्प्रदायिकता, स्त्री–दमन जैसे विषैले बीज बोने वाले लोग परम्परा की ही सहायता लेते है। स्वयं राम का नाम भी सामाजिक भेदभाव और साम्प्रदायिक शत्रुता का प्रतीक बनाया गया था। पर सत्य यही है कि प्राचीन परम्परा या किसी भी प्राचीन धार्मिक ग्रंथ से हम विविध प्रकार के विचार निकाल सकते हैं, जैसे कि जड़ी–बूटियों से औषधि का भी निर्माण किया जा सकता है और विष का भी। प्रश्न यह उठता है हमें क्या चाहिए? हर सभ्यता, हर संस्कृति, हर धर्म और परम्परा में सामाजिक कल्याण और विकास को बढ़ाने वाले तत्व भी हैं और क्षयकारी भी–उसमें से उचित चुनाव हमारी ही जिम्मेवारी है। अपने उपन्यास 'अभ्युदय' में कोहली जी ने यह स्पष्ट दिखाया है कि धार्मिक परम्परा का मौलिक भाग 'रामायण' प्रतिक्रिया वादी विचारों का ही नहीं

सामाजिक न्याय, समता, जनवाद, जाति–निरपेक्षता, साम्प्रदायिक सहयोग तथा स्त्री–उत्थान का साधन हो सकता है।

नरेन्द्र कोहली का समकालीन साहित्य में स्थान

डॉ. नरेन्द्र कोहली राम कथा पर आधारित वृहदाकार उपन्यासों के लेखन में आज एक चर्चित नाम है। फरवरी 1960 में 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'दो हाथ' से शुरू हुई उनकी कलम ने गत् 28–29 वर्षों में 28–29 कृतियाँ हिन्दी साहित्य को दे डाली। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व कितना वैविध्य पूर्ण, यह गद्य की प्रायः हर विधा में उपलब्ध उनकी रचनाओं से भली–भाँति लक्षित होता है।[1] उन्होने कहानी, व्यंग्य, नाटक, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना आदि में लेखन कार्य कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। आज हिन्दी साहित्य के स्थान में उनका नाम ऐतिहासिक पौराणिक उपन्यासकारों की श्रेणी में विशेषतः आता है। डॉ. नरेन्द्र कोहली उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार तथा व्यंग्यकार होते हुए भी अपने समकालीन साहित्यकारों से पर्याप्त भिन्न है। साहित्य की समृद्धि तथा समाज की प्रगति में उनके लेखन का योगदान प्रत्यक्ष है। वे आधुनिक है। किन्तु पश्चिम का अनुकरण नहीं करते। भारतीयता की जड़ों तक जाते है किन्तु पुराण पंथी नहीं है। नरेन्द्र कोहली जी सांस्कृतिक राष्ट्रवादी साहित्य कार है, जिन्होने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय जीवन–शैली एवं दर्शन का सम्यक परिचय करवाया है। नरेन्द्र कोहली जी हिन्दी के ही नहीं अपितु तमाम् भारतीय भाषाओं के उन विरले लेखकों में से एक है जिन्हे सम्पूर्ण साहित्यकार की संज्ञा दी जा सकती है। अभ्युदय, महासमर, सैरन्ध्री, हिडिम्बा, कुन्ती तथा न भूतो न भविष्यति जैसे क्लासिक या यूँ कहें कि कालजयी कृतियों की रचना करने वाले इस रचनाकार की

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहलीए नरेन्द्र कोहली ने कहा (बात–चीत)ए पृ0सं0 – 78

संवेदना परिधी में सम्पूर्ण भारतीय समाज, तमाम विविधताओं व जटिलताओं के साथ गम्भीर सांस लेना प्रतीत होता है। भारतीय संस्कृति के प्रत्येक पक्ष को सही परिपेक्ष्य में उजागर करने का श्रेय कोहली जी को जाता है। ''कालजयी रचनाकार की सबसे बड़ी विशेषता यही होती है कि वह अपने साहित्य में एक समान्तर संसार करते हुए जातिय स्मृतियों का एक विशेष खजाना अपनी आनेवाली पीढ़ियों तथा अपने समकालीन समाज के लिए गढ़ता है। यह भी कह दें कि दुनिया की महान से महान कृति भी समाज को संतुष्ट नहीं कर सकती। परन्तु कोहली जी का लेखन सभी विवादों से परे अपने पाठक वर्ग में उतना ही पूजनीय है जितना कि महाकवि तुलसीदास का रामचरित मानस तथा महर्षि वेदव्यास का महाभारत। प्राचीन के लौह तत्वों को भी अपनी जादुई कलम का स्पर्श देकर कंचन में परिवर्तित करने वाले इस महान रचनाकार का साहित्य आपको भूत, वर्तमान तथा भविष्य के सभी रहस्य समझने तथा परखने की दृष्टि प्रदान करता है।'[1] नरेन्द्र कोहली अपने ढंग के अनेके लेखक हैं जिन्होने भले ही रामायण, महाभारत की कथाओं की व्याख्या की हो, लेकिन मूलकथा को बिना बदले उन्होनें इन ग्रंथों को आधुनिक युग का नया चेहरा बना दिया। शायद यही कारण है कि नरेन्द्र कोहली जी के लेखन की प्रासंगिकता बनी हुई है। संभव है उन्होने कलासिक न लिखा हो लेकिन कलासिक्स को आमजन की भाषा में लिखकर हिन्दी के आम पाठकों तक जरूर पहुँचा दिया। जो एक महान उपलब्धि है।

नरेन्द्र कोहली का परिचय

नरेन्द्र कोहली जी का जन्म 6 जनवरी 1940 ई. को स्यालकोट में उनके पैतृक घर में हुआ था। जहाँ उनके दादा–दादी रहते थे।''[2] वे कहते हैं कि मेरे दादा जी का नाम 'हरकिशन दास'

---

1 अरूण माहेष्वरी, प्रकाषक : 19वाँ, वाणी प्रकाषन समाचार, जनवरी– 2015.

2 सं0 ईशान महेश नरेन्द्र कोहली ने कहा (बकलम खुद) पृ0स0 – 9.

और दादी का नाम 'भाइयाँ देयी' था। मेरी छोटी दादी का नाम 'दुर्गा देवी' था। दादाजी मैट्रिक पास थे। दादियाँ दोनो ही निरक्षर थीं।''[1] इनकी माता विद्यावंती का जन्म एक छोटे से गाँव के एक कृषक परिवार में हुआ था 1992 ई. में दिल्ली में अनुमानतः अस्सी–बयासी वर्ष की अवस्था में उनका देहांत हुआ। इनके पिता परमानन्द कोहली, स्यालकोट के मध्यम वर्गीय नौकरी पेशा परिवार में 1903 ई. में जन्मे थे। डॉ. कोहली का विवाह 1965 ई. में डॉ. मधुरिमा कोहली से हुआ, जो अब दिल्ली में, कमला नेहरू कॉलेज में रीडर के पद पर कार्यरत है। दिसम्बर 1967 ई. में कार्तिकेय का जन्म हुआ। कार्तिकेय अब रामलाल आनन्द (सांध्य) कॉलेज, दिल्ली में अर्थशास्त्र पढ़ा रहे है। पुत्रवधु वंदना चक्षु–विशेषज्ञ है। छोटे पुत्र अगस्त्य का जन्म 1975 ई. में हुआ। वे अब सियाटल (संयुक्त राज्य अमेरिका) में नेटवर्क अभियंता के रूप में कार्यरत है।

डॉ. नरेन्द्र कोहली की शिक्षा का आरम्भ पाँच वर्ष की अवस्था में देवसमाज हाई स्कूल लाहौर में हुआ। प्राइमरी स्कूल से लेकर बी.ए. (ऑनर्स) तक की पढ़ाई जमशेदपुर में हुई। 1963 में रामजस कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) से हिन्दी साहित्य में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी विश्वविद्यालय से 1970 में पी.एच.डी (विद्या वाचस्पति) की उपाधि प्राप्त की। डॉ. नरेन्द्र कोहली की पहली नौकरी दिल्ली के पी.जी.डी.ए.वी. (सांध्य) कॉलेज में हिन्दी अध्यापक (1963–65)के रूप में की। दूसरी नौकरी दिल्ली के मोती लाल नेहरू कॉलेज में 1965 ईण में आरम्भ की और 1995 को पचपन वर्ष की अवस्था में स्वैच्छिक अवकाश ले कर नौकरियों का सिलसिला समाप्त कर दिया।

---

[1] सं0 ईशान महेश नरेन्द्र कोहली ने कहा : शुभम प्रकाशन, दिल्ली, पृ0सं0– 9

डॉ. नरेन्द्र कोहली ने विभिन्न विधाओं में लेखन कार्य कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। डॉ. कोहली का मूल लक्ष्य लेखन है। उनके लिए लेखन की अनिवार्य शर्त है–नियमित और अनुशासित होना। कोहली जी का पहला उपन्यास है– ''पुनरारम्भ''। तत्पश्चात उन्होने ''आतंक'', ''साथ सहा गया दुख'' और 'आश्रितों का विद्रोह' आदि उपन्यास लिखे। तब से शुरू हुई लेखन परम्परा आज तक बरकरार है। आज कोहली जी के परिवार में दो बेटों, दो बहुओं तथा दो पोतों के साथ पत्नी मधुरिमा सहित भरापूरा परिवार है।

साहित्य रचना के समय पौराणिक कथानक तथा पात्र आकर्षण का प्रमुख केन्द्र होते है। यह स्थिति हिन्दी कथा साहित्य की ही नहीं अपितु सभी भाषाओं के कथा साहित्य की है। निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि कोहली जी नरेन्द्र कोहली जी ने रामकथा तथा कृष्णकथा के पुनराख्यान में प्रतिपादित मूल्यों तथा स्थापनाओं को बड़ी सावधानी से कलमबद्ध किया है। पुनराख्यान दोधारी तलवार है तनिक सी सावधानी सम्पूर्ण प्रयत्न को अनाकर्षक और कभी–कभी उपहासास्पदक तक बना देती है। समसामयिकता का मोह जैसे की उत्तेजना का रूप धारण करता है–समूची कृति अविश्वसनीय लगने लगती है। ऐतिहासिकता के खण्डित हो जाने के कारण स्थिति बिगड़ जाती है। दूसरी ओर पौराणिकता का अनावश्यक समावेश भी रचना को अनाकर्षक बना देता है। परन्तु डॉ. नरेन्द्र कोहली ने इस दोहरे दायित्व का निर्वाह करते हुए पौराणिकता को अक्षुष्ण बनाये रखने का दायित्व तथा समसामयिकता के भरपूर किन्तु गोपनीय समावेश का दायित्व दोनों का निर्वाह करते हुए अपनी रचनाओं में पौराणिकता में आधुनिकता की अवधारण को बड़ी सुन्दरता, सहजता व ईमानदारी से उकेरा है।

******

दीक्षा : एक कथ्यगत अध्ययन

दीक्षा की विषय वस्तु सिद्धाश्रम के उत्पात से लेकर परशुराम की पराजय तक की कथा है, किन्तु इसे लेखक नरेन्द्र कोहली जी ने एक नई दृष्टि से, एक नये रूप में प्रस्तुत किया है। विशाल जंबूद्वीप में हो रहे राक्षसी उत्पात और उसके परिणाम स्वरूप सत् मूल्यों के हनन् और राक्षसी मूल्यों के भयानक आतंक के विस्तार को देखने और उसका प्रतिरोध करने की 'दीक्षा' ऋषि विश्वामित्र राम को देते है। कथा में विविध प्रसंगों के बीच लेखक ने विभिन्न राजनैतिक अव्यवस्थाओं, जन सामान्य के शोषण, बुद्धिजीवियों के कर्तव्य, समाज में नारी का उत्थान, स्त्री पुरूष संबंधों, जाति और वर्ण की विभीषिकाओं, लोलुप और स्वार्थी बुद्धिजीवियों, शासकीय अधिकारियों आदि का क्रांतिकारी विश्लेषण किया है। अपनी मान्यताओं के सहारे प्रख्यात पौराणिक कथा को समकालीन संदर्भों में ढालकर मौलिक तथा आधुनिक उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया है।

कथा के विभिन्न पात्रों को मानव रूप में प्रस्तुत कर कथा में सजीवता व जीवन्तता का आभास कराया है। उपन्यासकार श्री नरेन्द्र कोहली जी का 'दीक्षा' लिखने का उद्देश्य पौराणिक मूल्यों की व्याख्या नहीं बल्कि समकालीन समस्याएँ हैं जो उपन्यास लिखते समय लेखक को प्रोत्साहित कर रही थी। उपन्यास एक सर्वविख्यात राम कथा पर आधारित जरूर है परन्तु आधुनिक संदर्भों में लिखे जाने के कारण व आधुनिक भाव–बोध से सम्पन्न होने के कारण यह उपन्यास समूचे समाज का मार्गदर्शन करता है। प्रस्तुत उपन्यास 'दीक्षा' में नरेन्द्र कोहली ने हिंसा–अहिंसा, मनोबल, पशुता–मनुष्यता आदि से संबंधित प्रश्नों को उठाकर उनके समाधान खोजने का प्रयास किया है।

कथानक की समीक्षा

इसे हम कथा, कथानक व विषय वस्तु भी कहते है। यह उपन्यास की आधारशिला होती है। उपन्यास में एक क्रमबद्ध कथानक का होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी होता है। श्री नरेन्द्र कोहली जी ने अपने उपन्यासों में इस तत्व का बड़ा ही सफल प्रयोग किया है। उनके कथानक में व्यवस्था है। व्यवस्था से तात्पर्य उपन्यास के सभी अंगों में समान अनुपात है। आवश्यक और अनावश्यक अंगों का उन्होने विस्तार किया है। इस सबके अतिरिक्त कोहली जी ने कथानक में रोचकता, संभाव्यता और मौलिकता आदि गुणों का सफल प्रयोग किया है। पौराणिक वस्तु विन्यास पर पहले नरेन्द्र कोहली जी ने रामकथा मूलक उपन्यास माला सात खण्डों मे प्रस्तुत की है, जिसमें 'दीक्षा' उपन्यास उन सात खण्डों में से प्रथम खण्ड है।

'दीक्षा' रामकथा पर आधारित ऐसा उपन्यास है जो सामयिक, लौकिक, तर्कसंगत तथा प्रासंगिक है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने आर्य–संस्कृति के लिए दिनानुदिन घातक होती जा रही संस्कृति के लिए रक्षसंस्कृति के प्रति महर्षि विश्वामित्र को अत्यंत चिंतित दिखाया है।

विश्वामित्र एक पुराण प्रख्यात नाम है। वे कुशनाम वंशज महाराज गाधि के पुत्र और क्षत्रिम नरेश थे। एक बार एक अक्षौहिणी सेना के साथ वशिष्ठ आश्रम पहुँचे जहाँ चितकबरी गाय (शबला) कामधेनु की शक्ति से महर्षि वशिष्ठ ने विश्वामित्र की अक्षौहिणी सेना का सम्यक सत्कार किया।

कामधेनु के सत्कार पर लुब्ध होकर विश्वामित्र ने महर्षि वशिष्ठ से कहा कि ''आप मुझसे एक लाख गौंवे लेकर ये शबला कामधेनु दे दीजिए क्योंकि यह गौ रत्न रूप है, और रत्न लेने का अधिकारी राजा होता है।''[1] जब वशिष्ठ किसी तरह से कामधेनु विश्वामित्र को देने को राजी नहीं हुए, तो विश्वामित्र ने बलपूर्वक

---

[1] रामायण 8/134 – बालकाण्ड

कामधेनु को छीनना चाहा। पहले कामधेनु की शक्ति से बाद में महर्षि वशिष्ठ के ब्रह्मदण्ड की शक्ति से विश्वामित्र पूर्ण परास्त हुए और उन्होने जान लिया कि वास्तविक बल ब्रह्मबल है।[1] विश्वामित्र ने कठोर तप करके ब्रह्मबल प्राप्त करना चाहा। पुराणानुसार मेनका, त्रिशंकु आदि तपोहारिणी घटनाओं के अनन्तर भी विश्वामित्र महर्षि बन गये। उन्होनें राम को बताया कि उनकी ऋचिक मुनि से परिणीता बहन अपने तपोबल से कौशिकी नामक नदी बन गई है और में हिमालय के कौशिकी तटवर्ती क्षेत्र में रहकर तप करना अधिक रूचिकर मानता हूँ तथापि मैं यज्ञ संबंधी नियम की सिद्धी के लिए ही अपनी बहन का सानिध्य छोड़कर सिद्धाश्रम (बक्सर) आया। यहाँ आकर उन्होने सर्वत्र ताड़का के नेतृत्व में राक्षसी आतंकवाद का प्रासाद देखा। कौशिकी नदी के तट पर, अपनी प्रिय तपोभूमि को छोड़कर महर्षि विश्वामित्र ने ताड़का बन के समीप (वर्तमान में बिहार प्रांत का जिला बक्सर) 'सिद्धाश्रम' में आध्यात्मिक अनुष्ठान और यज्ञ आदि करके आर्य संस्कृति को सुरक्षित और प्रसारित करने का उपक्रम करते है।

'दीक्षा' उपन्यास रामकथा पर आधारित है व इसके नायक राम है। विश्वामित्र ने राम को समाज कल्याण के लिए न केवल चुना बल्कि दीक्षित कर समाज से अन्याय के उन्मूलन के लिए प्रेरित किया।

कथा का आरम्भ 'सिद्धाश्रम' (वर्तमान के बिहार प्रांत का जिला बक्सर) से होता है। चारों ओर राक्षसी आतंक फैला हुआ है। विश्वामित्र आर्य संस्कृति की रक्षा हेतु तथा उसे प्रसारित करने हेतु अनुष्ठान करना चाहते है। परन्तु जब भी वे कोई यज्ञ करते थे तो राक्षस उसमें बाधा उत्पन्न कर उस यज्ञ को पूर्ण नहीं होने देते थे। राक्षस सरेआम लोगों को लूट रहे थे। नर–भक्षण, यज्ञ–विध्वंस तथा

---

[1] रामायण–23/141, बालकाण्ड

बलात्कार जैसे दुष्कृयों को देखकर विश्वामित्र आहत हो उठते है। ''मार्ग में जहाँ–तहाँ आश्रमवासियों के त्रस्त चेहरे देखकर विश्वामित्र का उद्वेग बढ़ता गया। आश्रमवासी गुरू को आते देख मार्ग से एक ओर हट नतमस्तक हो खड़े हो जाते थे। और उनका इस प्रकार निरीह–कातर होना, गुरू को और भी पीड़ित कर जाता था, ये सब लोग मेरे आश्रित है। ये मुझपर विश्वास कर यहाँ आये है। इनकी रक्षा और व्यवस्था मेरा कर्तव्य है, और मैने इन सब लोगों को इतना असुरक्षित रख छोड़ा है। इनकी रक्षा का प्रबन्ध.......।[1] विश्वामित्र के कठोर शुष्क चेहरे पर भी दया, करूण पीड़ा, उद्वेग, क्षोभ, क्रोध, विवशता जैसे भाव पूँजीभूत हो कुंडलीमारकर बैठ गये थे। विश्वामित्र के सामने नक्षत्र का मृत शरीर था। उसका शरीर क्षत–विक्षत था कि विश्वामित्र देख न सके, उधर सुकंठ द्वारा आश्रम वासिनी आर्या अनुगता को राक्षसों से बचाने के उपक्रम में वह बुरी तरह घायल हो गया था। इन्ही सब घटनाओं को लेकर विश्वामित्र बहुत चिंतित हो रहे थे। उन्होनें मुनि अजानुबाहु को बुलाया। मुनि अजानुबाहु ने राक्षसों के अत्याचारों के बारे में विश्वामित्र को विस्तारपूर्वक बताया और लोगों की व्यथा सुनाई। सेनानायक बहुलाश्व भी जनता की रक्षा नहीं करता है बल्कि राक्षस शिविर से उत्कोच लेकर उनका सहयोग करता है। अजानुबाहू विश्वामित्र को बताते हैं कि सम्राट दशरथ की राज्य सीमा के निकट एक गाँव में सेनापति बहुलाश्व के शिविर के निकट की एक स्थान पर गहन नामक वृद्ध के परिवार की महिलाओं के साथ आर्य युवकों ने न केवल बलात्कार किया बल्कि जीवित गहन को जला दिया और उसकी चिता में लौह शलाकाएँ गरम करके उन दलित स्त्रियों के गुप्तांगों पर अपनी जाति चिह्नित की। विश्वामित्र के लिए यह सबकुछ असहनीय होता जा रहा था। आर्यावर्त्त के लोग कमजोर व असहाय थे। राजा इस भीषण अत्याचार से मुँह मोड़कर बैठे हुए थे। उनकी मौजुदगी में सेनापति बहुलाश्व जैसे रक्षक स्वयं भक्षक बने

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली दीक्षा, पृ0सं0 – 7

बैठे थे, देवता क्षीण हो चुके थे। राक्षस देवताओं के समान विज्ञान एवं तकनीक में उन्नत न सही, परन्तु अस्त्र–बल तथा जन–शक्ति से सम्पन्न थे। ये सब सोचकर विश्वामित्र अनजाने भय से काँप गये –''कितना असुरक्षित है आर्यावर्त्त............आर्यावर्त्त ही क्यों सारा जम्बद्वीप। दक्षिण में कोई शक्तिशाली राजा नहीं है। वहाँ के निवासी–अर्द्धविकसित जातियों के पास शस्त्र–बल है ही नहीं। वे हाथों, नखों, दाँतों, पत्थरों तथा लकड़ियों से लड़ते है। वे कैसे रोक पाएँगे रावण की सुशिक्षित, सशस्त्र व संगठित सेना को।''[1] विश्वामित्र व्यथित, चिंतित तथा असमंजस में है। साधारण प्रजा कितनी दुःखी थी। बेचारे शबर, निषाद, किरात, भीत,दक्षिण के वानर, ऋक्ष तथा अन्य जातियाँ। इन सबने सोचा था कि आर्य जाति उनका उद्धार करेगी। पर क्या हुआ? एक ओर आर्यों ने आर्य संस्कृति उन तक पहुँचने ही नहीं दी है और दूसरी आर्य संस्कृति के उद्घोषकर्ता स्वयं राक्षस होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में वे क्या करें और अगस्त्य, बाल्मीकि या भारद्वाज ही क्या करेंगे? परन्तु कुछ तो करना ही होगा, यही कर्म करने का उचित समय है। उसी समय विश्वामित्र अयोध्या जाकर सम्राट दशरथ के पुत्र राम को लाने का निर्णय लेते हैं।

अयोध्या पहुँचकर राक्षसों के अत्याचार और आतंक का वृतांत सुनाकर राजा दशरथ से यज्ञ की रक्षा हेतु दस दिनों के लिए राम को माँगा। राम के प्रति अपार स्नेह होने के कारण दशरथ राम को विश्वामित्र के साथ भेजते समय बहुत व्यथित प्रतीत हो रहे थे। शंबर युद्ध में घायल दशरथ के प्रशासनिक कार्य राम द्वारा दिखाई गई योग्यता व क्षमता की परख कर दशरथ प्रभावित हुए बिना न रह सके थे और उन्होने राम को अपना अंतिम सहारा मान लिया था, वे राम को विश्वामित्र के साथ भेजकर राम के प्राणों को संकट में नहीं डालना चाहते थे परन्तु गुरू वशिष्ठ के समझाने पर, विश्वामित्र से राम को सकुशल लौटाने का वचन लेकर दशरथ ने राम को

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 – 19

विश्वामित्र के साथ भेज दिया। राम विश्वामित्र को वचन देते हैं कि जहाँ कहीं भी अत्याचार होगा वे अपने प्राणों का प्रण लगाकर भी उसका विरोध करेंगे। विश्वामित्र ने राम के वचन से आश्वस्त होकर राम को अन्याय के विरूद्ध लड़ने के लिए सभी प्रकार के अस्त्रों–शस्त्रों से प्रशिक्षित किया। सिद्धाश्रम जाते समय राम ने ताड़का का वध किया। ताड़का वध के उपरांत विश्वामित्र राम से कहते हैं–

"तुमने अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध आज सक्रिय युद्ध आरम्भ कर दिया है। न्याय का संघर्ष एक बार आरम्भ हो जाए, तो पुत्र। उसमें न तो समझौता होता है, और न उसे स्थगित करना ही संभव हो पाता है। तुमने जो जोखिम मोल लिया है उसे अब अंत तक निभाना होगा।"[1] ताड़का वध के पश्चात् अन्य राक्षस भी वहाँ से डरकर भाग गये। तत्पश्चात सब सिद्धा– श्रम की ओर अग्रसर होते है। वहाँ पहुँचकर विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण को प्रजा को संगठित करने की सलाह देते है–"राम! तुम राक्षसों का नाश करने के साथ–साथ प्रजाजनों का तेज व आत्मविश्वास लौटाओ–न्याय में उनकी खोई आस्था व प्रतिष्ठा पुनः प्रतिष्ठित करो। तुम उनमें रामत्व स्थापित करो। अवतार की आवश्यकता दुर्बल प्रजा को होती है, पुत्र ! तेजस्वी प्रजा, अपने– आप में ईश्वर का रूप होती है। अतः राजा की 'दीक्षा' भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। अदीक्षित प्रजा की सहायता से की गई क्रांति बहुधा दिग्भ्रमित हो जाती है और संत के रूप में छिपे भेड़िए प्रजा का रक्त चूसने लगते है।"[2] विश्वामित्र राम लक्ष्मण को सिद्धाश्रम की वर्तमान वास्तविक स्थिति के बारे में बताते है। सिद्धाश्रम में आश्रमवासी ताड़का–वध का समाचार पाकर नई ऊर्जा से भर, प्रसन्न हो, अन्याय के विरोध में राम का साथ देने को तत्पर हो जाते है। आश्रमवासियों में नव ऊर्जा का संचार देख राम सोचते हैं–"न तो जन– सामान्य में न्याय का अभाव है, न साहस की कमी। वे तो भ्रष्ट परिवेश के कारण

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 – 58
[2] वही, पृ0सं0 – 60

अपना आत्मविश्वास खो बैठते है। एक बार उन्हे विश्वास हो जाए कि अन्याय के विरूद्ध लड़ने में कोई उनका कोई सहायक हैं तो वे जूझ मरने को तैयार हो जाते है। न्यायी शासक का नेतृत्व पाकर स्वयं प्रजा ही अपने बल पर समस्त अन्याय और अत्याचार को समाप्त कर देती है। पर यदि शासक अन्यायी हो तो ये दुर्बल जन किसके भरोसे पर अन्याय के विरूद्ध लड़ें.....?''[1] विश्वामित्र राम से कहते है कि निरीह से दिखने वाले ये लोग आज कितने निर्भय हो राक्षसों से युद्ध को तैयार बैठे है। तुम समर्थ हो राम तुमने चमत्कार कर दिया। तभी विश्वामित्र आश्रम में यज्ञ करवाते है। राम–लक्ष्मण विश्वामित्र के। अखण्डित यज्ञ को पूर्णाहुति देते हैं व पूर्ण करवाते है। यज्ञ निर्विध्न सम्पन्न हुआ। मारीच व सुबाहु नामक राक्षसों ने यज्ञ में बाधा उत्पन्न करने की कोशिश की थी। परन्तु सुबाहु मारा गया और मारीच घायल होकर भाग गया। गगन अपने अपराधी, सेनानायक बहुलाश्व के पुत्र देवप्रिय और उनके चार साथियों को बंदी बनाकर राम के सामने न्याय के लिए प्रस्तुत करते है।

आचार्य विश्वबंधु द्वारा उनका पक्ष लिए जाने पर लक्ष्मण आचार्य से कहते है कि न्याय–अन्याय वे उन पर ही छोड़ दें। न्याय करते समय जाति–पाति, ऊँच–नीच को नहीं देखना चाहिए। राम देवप्रिय व उसके साथियों को मृत्युदण्ड प्रस्तावित करते है। राम के इस निर्णय से प्रजा में न्याय के प्रति आस्था जागृत होती है। जब बहुलाश्व अपने पुत्र को ढूँढने के लिए सिद्धाश्रम आता है तब उसे राम द्वारा अपने पुत्र को मृत्युदण्ड दिए जाने की जानकारी होती है। यह जानकर वह क्रोधित हो राम से बदला लेने के लिए अपनी खडग उठाता है परन्तु राम का एक ही बाण बहुलाश्व की इहलीला समाप्त कर देता है। राम प्रजाजनों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि ''आप लोग निश्चित हों। जो कुछ भी हुआ, उसमें कुछ भी गलत नहीं

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा, पृ0सं0 – 65

हुआ। पापियों को उचित दण्ड मिल गया।''[1] सिद्धाश्रम में जागृति तथा अन्याय उन्मूलन करने की दीक्षा दें. राम–लक्ष्मण, विश्वामित्र के साथ मिथिला के लिए प्रस्थान करते हैं। मार्ग में विश्वामित्र ने राम व लक्ष्मण को अहल्या की कथा विस्तार पूर्वक सुनाई, जिसमें अहल्या को पूर्णतः निर्दोष सिद्ध किया जाना। इंद्र द्वारा आश्रम के कुलपति गौतम की पत्नी अहल्या का बलात् अपमान किया जाना, इंद्र द्वारा अहल्या पर झूठा लांछन लगाकर चरित्रहीन कहा जाना। आश्रमवासियों का चुपचाप अन्याय को देखकर भी अनदेखा कर देना, गौतम का अपनी पत्नी को पूर्णतः निर्दोष समझते हुए भी, असहाय हो जाना, उपकुलपति अभित लाभ द्वारा आश्रम को भ्रष्ट व समाज के समाने अहल्या को पतित घोषित करना। सीरध्वज का सामाजिक बहुमत देखते हुए अन्याय का प्रतिरोध न कर पाना। गौतम का पुत्र सहित निर्दोष अहल्या का त्याग कर देना। अहल्या का पच्चीस वर्षों तक शिलावत् एकांतवास करना आदि। पच्चीस वर्षों के बाद विश्वामित्र राम–लक्ष्मण को लेकर अहल्या की कुटिया में जाते है। ताकि उसे सामाजिक प्रतिष्ठा दिला सकें। राम–लक्ष्मण के कुटिया में पहुँचने पर विश्वामित्र ने उनका परिचय अहल्या को दिया तथा अहल्या ने आगे का वृतांत राम–लक्ष्मण को सुनाया। वह उनसे कहती है ''पुत्र मेरी कथा क्या होगी?'' अहल्या का स्वर गंभीर था, किंतु उदास नहीं, कितने ही समय मैं अपनी कुटिया से नहीं निकली। शैय्या पर पड़ी–पड़ी रोती रही। पर जब रो–रोकर मन की पीड़ा बह चुकी और भूख प्यास से पीड़ित हुई, तो मुझे उठना ही पड़ा। मेरे पास डूँडी और दो–चार गायें थीं, फलों के कुछ वृक्ष थे। आश्रम में कुछ साग–सब्जी थी। मुझे उन सबकी रक्षा करनी थी, ताकि वे मेरी रक्षा कर सकें। मैं इन्ही कामों में लगी रही। खाली समय में बैठकर कभी पुरानी बातें तो कभी अपने प्रियजनों को याद कर लेती थी और यदि मन मानता तो ब्रह्म का ध्यान भी कर

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 – 77

लेती थी, पुत्र ! इन दिनों मैं आश्रम से बाहर कभी नहीं निकली।''[1] वह उन्हे बताती है कि किस प्रकार एक दिन अस्वस्थ होने पर जब उसने वैद्य की सहायता लेने की सोची तो किस प्रकार लोग उसको देखकर चीखते–चिल्लाते घरों से निकल आये, मानो उन्होने कोई प्रेत देख लिया हो, लोग उसकी छाया से भी बच रहे थे, उसे ढेले मार रहे थे। वह बताती है कि वस्त्र भी वह स्वयं बोई कपास को कातकर बुनती है। उसकी व्यथा कथा सुनने के बाद विश्वामित्र उसे सांत्वना देते हुए कहते हैं कि वे उसे गौतम को सौंपते हुए ही जनकपुर जाएँगे।

अब तक राम समझ चुके थे कि गुरू विश्वामित्र सिर्फ ताड़का वध की बात कहकर लाए थे परन्तु उनका दूरदर्शी ध्येय कुछ और ही है। अहल्या के आश्रम से विश्वामित्र ने जनकपुर में प्रवेश किया तथा राम को सीता के बारे में बताया कि सीता सीरध्वज की जन्म ली हुई पुत्री नहीं है बल्कि भूमि–पुत्री है। जो सीरध्वज को अपने राज्य के किसी खेत में हल चलाते समय मिली थी, जो एक अज्ञात कुलशीला है। सीरध्वज ने उस कन्या को पुत्रीवत् पाला है, किन्तु अब जब सीता विवाह के योग्य हो गई है तब जाति–पाँति, कुल–गोत्र और ऊँच–नीच की सामाजिक धारणाओं के कारण सीता के विवाह की समस्या जटिल होती जा रही है। अब समस्या यह है कि सीता के लिए उचित वर मिलना मुश्किल हो गया है। इसलिए सीरध्वज ने सीता के विवाह की एक युक्ति सोची है कि जो कोई भी उनके पास रखे शिवधनुष की प्रत्यंचा चढ़ा देगा, अर्थात उस यंत्र को संचालित कर देगा, वे सीता का विवाह उससे कर देंगे। विश्वामित्र राम को शिवधनुष (अजगव) की संचालन विधि बताते है, वे चाहते है कि राम का विवाह सीता के साथ हो जाए। राम ने यह जानकर भी कि सीता एक अज्ञात कुलशीला है उससे विवाह की स्वीकृति गुरू को दे दी। गुरू विश्वामित्र राम द्वारा लिए निर्णय की सराहना करते हुए कहते है–''जो व्यक्ति बनजा को

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 – 155

सम्मान का वचन दे सकता है, अहल्या को सामाजिक प्रतिष्ठा देने का साहस कर सकता है, वह सीता के साथ भी अवश्य ही न्याय करेगा—ऐसा मेरा विश्वास है, और तुम मुझ पर विश्वास करो, राम ! तुम सीता को अपने योग्य पत्नी पाओगे।"[1] विश्वामित्र की बात सुनकर राम विश्वामित्र से कहते हैं कि उन्हे सीता की भी इच्छा जान लेनी चाहिए। राम ने अपने बल, कौशल व विश्वामित्र द्वारा बताई युक्ति के अनुसार धनुष तोड़ दिया। शिव धनुष टूटते ही जन समुदाय आश्चर्य चकित हो गया था क्योंकि उनके सामने एक असंभव अकल्पनीय कार्य राम के द्वारा सम्पन्न कर दिया गया था। धनुष टूटते ही एक बार दृष्टि भर, राम के रूप को निहारा, पास रखी जयमाला को उठाया और भावुकतावश अपनी आँखे मूँद ली। सीता सोच रही थी कि अब राम सिर्फ उसके थे और वह राम की। राम ने उन्हे पाने के लिए अद्भुत पराक्रम दिखाया था। सीता ने जयमाला राम के गले में डाल दी।

सीरध्वज ने प्रेम के आवेश में, राज मर्यादा को भुलाकर भागते हुए राम को अपनी भुजाओं में भरकर कंठ से लगा लिया। बारात चल पड़ी—सबसे आगे गुरू वशिष्ठ का रथ चल रहा था। उनके पीछे एक रथ में, अपनी अनेक सखियों के साथ सीता थी। राम तथा लक्ष्मण घोड़ों पर सवार सीता के रथ के साथ—साथ चल रहे थे। उनके पीछे—पीछे भरत तथा शत्रुघ्न थे। उनके पश्चात् कैकेयी के भाई युद्धजित का रथ चल रहा था। फिर अनेक तपस्वती ब्राह्मणों के रथ थे, और सबसे अंत में अश्वारोहियों की टुकड़ियाँ दशरथ सोच रहे थे कि ये सब—कुछ कितनी अचानक घटित हो गया। वे विश्वामित्र के बारे में कितना गलत सोच रहे थे, उन्हे कोस रहे थे कि उन्होने वशिष्ठ के साथ मिलकर दशरथ के विरूद्ध षड्यंत्र रचा है। परन्तु पिछले दिनों में घटी घटनाओं को सुनकर विस्मित् रह गये थे दशरथ। कितनी सीमित, संकुचित व संकीर्ण दृष्टि से दशरथ ने विश्वामित्र को

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 — 163

देखा था। अपने पुत्र–स्नेह की अंधदृष्टि में राम की शक्ति को कितना कम आँका था। उन्होने विश्वामित्र को अपना और अपने पुत्रों का शत्रु समझा था और उसी विश्वामित्र ने उनके पुत्रों से कैसे–कैसे अद्भुत कार्य करवा दिए थे। दशरथ के हृदय में आज विश्वामित्र के लिए गुरू वशिष्ठ से भी कहीं बढ़कर श्रद्धा, विश्वास व स्थान था। सीरध्वज जनक, जिनका अबतक दशरथ के लिए कोई अस्तित्व न था, आज सहोदर भाई के समान प्रतीत हो रहे थे। विश्वामित्र बारात की विदाई तक नहीं रूके वे जल्द से जल्द अपने कौशिकी तट के आश्रम में लौट जाना चाहते थे। राम और सीता का विवाह सम्पन्न होते ही उनके उद्देश्य की पूर्ति हो चुकी थी।

अचानक ही जोर की ध्वनि के साथ एक यान पृथ्वी पर उतरा, शिव का धनुष टूटने का समाचार सुनकर परशुराम बहुत क्रोधित हो उठे थे, और पृथ्वी पर यान द्वारा आ गये। परशुराम को देखते ही दशरथ भयभीत हो गये। परन्तु लक्ष्मण पटुता से परशुराम के प्रश्नों का उत्तर देते रहे। परशुराम को लक्ष्मण पर बहुत क्रोध आया और उन्होने लक्ष्मण पर प्रहार करने के लिए अपना परशु साधा किन्तु राम ने उन्हे प्रहार करने से रोक दिया। परशुराम का क्रोध राम के वचनों से शांत हो चुका था, वे स्वगत् बोले–''तुम शायद ठीक कह रहे हो मेरी क्रांति–दृष्टि पुरानी पड़ चुकी है, रूढ़ हो चुकी है। क्रांति तो निरन्तर चलने वाली एक प्रक्रिया है। नित नये संदर्भों को पहचानने वाली। संसार को आगे, और आगे, और आगे ले जाने वाली। तुम्हारा कहना उचित ही है, न्याय का शत्रु सदा एक ही रूप में नहीं आता। मुझे अत्याचार को उसके नये रूप में भी पहचानना चाहिए था। तुम्हारा निष्कर्ष ही सही है, राम। मैं शायद पुराना पड़ गया हूँ। प्रत्येक युग की अपनी एक दृष्टि होती है। हमारी दृष्टि चाहे न बदले, युग तो बदल ही जाता है। और सम्मान केवल युग दृष्टि का ही होता है ....

.....।''[1] वे राम को अपने क्रोधित होने का कारण बताते हैं कि राम ने अपने हाथों से उनके गुरू शंकर का धनुष तोड़ दिया, जिससे वे आहत परन्तु राम ने अजगव के साथ–साथ उनका दम भी तोड़ दिया। परशुराम ने राम की परीक्षा के लिए एक वैष्णवी धनुष संचालन के लिए राम को दिया। राम ने उस धनुष के भी टुकड़े–टुकड़े कर दिया। परशुराम यह दृश्य देखकर पूर्णतः आश्वस्त हो गये कि राम अन्याय के दमन की 'दीक्षा' पूरी कर चुके हैं। वे खोये हुए से अपने यान द्वारा आकाश में लौट गये और बारात अयोध्या के लिए चल पड़ी।

दीक्षाः प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण

रामायण की कथा वस्तु पर आधारित डॉ. कोहली के चार उपन्यासों में से 'दीक्षा' के प्रमुख पात्रों पर विचार किया गया है। किया गया है कि वैदिक साहित्य में भी ''राम'' शब्द का उल्लेख अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है।

राम

डॉ.नरेन्द्र कोहली ने ''दीक्षा'' उपन्यास में राम का चरित्र–चित्रण एक नायक के रूप में किया है। डॉ. नरेन्द्र कोहली के राम मनुष्य है। परब्रह्म या ईश्वर के अवतार नहीं। उनकी सृष्टि लेखक ने पूर्णरूपेण मानवीय धरातल पर की है। एक महानायक के रूप में उनका चित्रण हुआ है। मनुष्य की तरह उनमें भी आशा–निराशा तरंगायित होती है। उन्हे भी सुख–दुःख होता है। यहाँ लीला के रूप में नहीं बल्कि राम का सम्पूर्ण कार्य–कलाप मानवीय धरातल पर व्यक्त हुआ है। अपनी विचारधारा और युग बोध के अनुसार लेखक ने राम के चरित्र–चित्रण में कई स्थानों पर परिवर्तन

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –191

भी किया है। यहाँ राम का जन्म पुत्रेष्टि–यज्ञ द्वारा नहीं हुआ है। पुत्रेष्टि–यज्ञ को तो एक रूढ़ि या परम्परा के रूप में चित्रित किया गया है।[1] राम दशरथ की प्रथम रानी कौशल्या के पुत्र हैं तथा राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के जन्म एक समय पर न होकर थोड़े–थोड़े अन्तराल पर हुए है। राम और लक्ष्मण में लगभग दस वर्ष का अन्तर दिखाया गया है। कैकेयी के आकर्षण के कारण दशरथ, कौशल्या और सुमित्रा के साथ अन्याय करते है। परिणामतः राम–लक्ष्मण का शैशव भी उपेक्षित रहता है। राम अपनी माता की पीड़ा को समझते है तथा इस कारण दुःखी भी रहते है। कैकेयी से सौतिया– डाह के कारण कौशल्या–सुमित्रा में पारस्परिक बहनापा हो जाता है जो स्वाभाविक व मनौवैज्ञानिक है। अतः जब राम को वनवास जाना पड़ता है तब वे दोनो माताओं की उचित व्यवस्था करने के उपरान्त ही अयोध्या छोड़ते हैं। इस प्रकार लेखक ने राम के चरित्र की सृष्टि बिलकुल मानवीय दृष्टि से की है।

डॉ. कोहली ने राम के उद्धारक रूप को लिया है। वे बलत्कृ त नारी वनजा का उद्धार करते है।[2] इंद्र द्वारा बलत्कृत व लांछित अहल्या का उद्धार करते हैं।[3] अज्ञात कुलशीला सीता से विवाह करके एक प्रकार से उसका तथा राजा जनक का भी उद्धार करते है। वस्तुतः राम का वनगमन भी सोद्देश्य था। गुरू विश्वामित्र ने उनको जो दीक्षा दी, जो धनुर्विद्या की शिक्षा दी, लौकिक शस्त्रास्त्र तथा दिव्यास्त्र दिए, उसका गुरू–ऋण वे समग्र मानव–जाति को अन्याय–अत्याचार से मुक्ति दिलाकर चुकाते है।

यहाँ राम का जननायक का रूप भी सामने आता है। राम जहाँ–जहाँ जाते हैं अन्याय–अत्याचार और शोषण के खिलाफ लोगों

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली एदृष्टव्यः नरेन्द्र कोहली ने कहाः पृ0सं0–41
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय–1 (दीक्षा) पृ0सं0 – 85
[3] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय–1 (दीक्षा) पृ0सं0 – 149

का जाग्रत व संगठित करते है। लोगों को संगठित करके वे उन तमाम संगठनों व प्रतिष्ठानों का नाश करते हैं जो मानवता के शत्रु हैं, सामाजिक–सामूहिक प्रगति के विरोधी है और जो केवल व्यैक्तिक विकास व विलास में विश्वास करते है।

प्रगतिवादी शब्दावली का प्रयोग करें तो राम पूँजीवाद के विरोधी तथा सर्वहारा के पक्षधर है। राम सुबाहु, ताड़का, बहुलाश्व आदि का वध करके यह बता देते है कि वे अन्याय को कभी भी सहारा नहीं देंगे चाहे वह राक्षस हों या आर्य। लक्ष्मण के प्रति उनका प्रेम अविरल छलकता है। इस प्रकार पारिवारिक संदर्भ में राम एक आदर्श स्वरूप के स्वामी है। वे आज्ञाकारी पुत्र, आज्ञाकारी शिष्य, स्नेहिल बंधु, आदर्श पति तथा आदर्श जननायक के रूप में यहाँ चित्रित हुए हैं।

सीता

सीता को इस उपन्यास में नायिका के रूप में चित्रित किया गया है। सीता को यहाँ एक अज्ञात कुलशीला सीरध्वज राजा जनक की पोषित कन्या के रूप में दर्शाया है। मिथिला के एक उत्सव में अपने खेत में हल चलाते हुए वह राजा जनक को मिलती है। राजा अपने किसी प्रजाजन की कन्या समझकर उसे पाल–पोसकर बड़ा करते है। किन्तु अज्ञात कुलशीला होने के कारण कोई क्षत्रिय राजकुमार उसके वरण हेतु आगे नहीं आता। तब अपने गुरू व पुरोहित की सलाह से जनक उसे वीर्य शुल्का घोषित करते है। जिससे वे अनेक प्रकार के प्रवादों से बच सकते है। विश्वामित्र के मार्गदर्शन में राम शिव–धनुष भंग करने में सफल होते है। सीता भी राम को मन ही मन चाहती है, फलतः राम की सफलता के लिए प्रार्थना करती है।''इससे पूर्व आने वाले परीक्षार्थी पुरूषों की असफलता के लिए सीता ने प्रार्थना की थी, और आज वही सीता राम की

सफलता के लिए प्रार्थना करती–सी प्रतीत हो रही है ....''[1] प्रस्तुत उपन्यास में सीता न तो पौराणिक है, न पारम्परिक, न रूढ़िवादी। यहाँ वह सच्चे अर्थों में राम की जीवन संगिनी है, मानवतावादी आधुनिक चेतना–सम्पन्न नारी है। वह सम्राट सीरध्वज के परिवार की परम्पराओं में शिक्षित हुई है, उसे राजसी संस्कार प्राप्त हुए हैं यहाँ यह कहना सर्वथा उचित होगा कि–सीता राजसी संस्कारों से युक्त होने पर भी साधारण है, और साधारण होकर भी राजकुमारी है।

सीता पिता सीरध्वज की लाडली पुत्री है। उसका भी पिता के प्रति असाधारण आदर–सम्मान, जनकपुर के राज प्रसादों का शील, शिष्टाचार, पिता का सम्राटत्व ....कुछ भी पिता–पुत्री के बीच कभी दीवार बनकर नहीं आया था। अपने पिता को अपने विवाह के लिए चिंतित देखकर वह एक साधारण कन्या की भाँति दुःखी होती है। सीता सोचती है कि–'' अपने शैशव में उन्होने माता–पिता को संतान संबंधी जितनी तृप्ति दी है, बड़े होते ही चिंता व क्लेष दिया है।''[2]

पहली बार अपने होने वाले पति से मिलने की उत्सुकता सीता के स्वभाव में भी दिखती है। वह एक साधारण कन्या होते हुए भी राजकुमारी के गुणों से सम्पन्न है तथा एक राजकुमारी होते हुए भी सर्वथा साधारण आचरण की स्वामिनी है।

लक्ष्मण

लक्ष्मण का आलेखन भी लेखक ने मानवीय धरातल पर ही किया है। राम और लक्ष्मण के समव्यस्क होने की बात भी लेखक नकारते है। उनके बीच कम से कम दस का अन्तर लेखक स्वीकारते है। फलतः छोटे भाई होने के कारण वे अपने बड़े भाई राम का बहुत आदर करते हैं। माता सुमित्रा की ओर से भी लक्ष्मण को सदा यही

---
[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहलीए अभ्युदय–1 (दीक्षा) पृ0सं0–176
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0–172

शिक्षा मिली कि हमेशा भाई राम के साथ ही रहें। लक्ष्मण एक वीर, बुद्धिमान, चतुर, वाकपटु, स्वाभिमानी, क्षत्रिय राजकुमार है। वे हँसमुख व परिहास पूर्ण व्यक्तित्व के स्वामी हैं। वे मातृ–भक्त हैं माता सुमित्रा के वचन उनके लिए पत्थर की लकीर है। भाई राम उनके आदर्श हैं। स्वभावतः वे उग्र तथा व्यग्र प्रकृति के है अपने क्रोध को छिपा पाने की क्षमता उनमें नहीं है। यही कारण है कि कटुवचन उनकी भाषा बन जाते है। वह आत्मविश्वास से युक्त जाज्वल्यमान अनल के समान है, यह गुण उनमें माता–सुमित्रा से आया है।

तेरह वर्ष की आयु में भी उनमें नेतृत्व की अजब क्षमता थी। उदाहरणार्थ–''लक्ष्मण की टोली बड़े आत्मविश्वास और सामर्थ्य के साथ, उनसे जूझ रही थी। लक्ष्मण ताक–ताक कर उन्हे तीक्ष्ण फलों वाले बाण मार रहे थे। बीच–बीच में वे वायवास्त्र का भी प्रयोग कर रहे थे।''[1]

पिता के प्रति लक्ष्मण का व्यवहार सहज नहीं था, उन्हे अपने पिता के व्यवहार और चरित्र हीनता से आपत्ति थी। वह पिता का विरोध तो नहीं कर पाते थे परन्तु उन्हे प्रेम भी नहीं किया। उनके व्यवहार की यह कटुता उनकी वाणी में भी झलकती थी– ''भ्रम तो सम्राट का भैया के प्रति मोह था वरन् वह नाटक था। ऐसे बहुत से नाटक हमारे पिता करते रहते है। हमारे पिता बहरूपिया हैं, ऋषिवर!''[2] अपने पिता के लिए कभी भी लक्ष्मण 'पिता' शब्द का प्रयोग नहीं करते वे सदा उन्हे 'सम्राट' या तो 'महाराज' कहकर ही पुकारते थे। इससे दशरथ के प्रति उनकी घृणा व तिरस्कार का पता चलता है। वे अत्यंत उत्साही, साहसी, उद्यमी, नवीन कार्यों व प्रयोगों के प्रति तत्पर, वीर योद्धा, अत्याचार विरोधी, अद्वितीय भातृ–प्रेमी, न्यायप्रिय है।

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –70
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –37

दशरथ

दशरथ एक पौराणिक पात्र है। दशरथ रघुकुल के प्रतापी राजा अज के पुत्र है। अपनी युवावस्था में वे एक विलक्षण योद्धा थे और उन्होने अनेक युद्ध जीते थे। वे चक्रवर्ती सम्राट रघुकुल के स्वामी तथा अयोध्या के शासक है। उनकी तीन रानियाँ है– कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। कौशल्या एक सामान्य सामन्त की पुत्री होने के कारण रघुकुल में सदैव उपेक्षित रही। सुमित्रा एक क्षत्रिय राजा की पुत्री थी, किन्तु दशरथ से उसका विवाह एक राजनैतिक संधि के तहत हुआ था, अतः उसने मन से कभी दशरथ को प्रेम नहीं किया था। कैकेयी से दशरथ का विवाह तब हुआ जब वे प्रौढ़ता की ओर जा रहे थे। कैकेयी नवयौवना और असाधारण सुन्दरी थी परन्तु यह विवाह दशरथ ने उसके पराजित पिता को विवश करके किया था। अतः वही भी दशरथ से प्रसन्न नहीं थी, बल्कि प्रतिशोध की ज्वाला में धधक रही थी कैकेयी का वय कम था और दशरथ बूढ़े हो चले थे। परिणामतः कैकेयी हमेशा दशरथ पर हावी रहती थी। इसलिए लेखक ने दशरथ को एक कामांध और विलासी प्रकृति का सम्राट बताया है। उनके अन्तःपुर में उक्त तीन रानियों के अतिरिक्त अनेक सुन्दर युवती स्त्रियाँ है। इनके साथ सम्राट ने कभी आकर्षित होकर अपनी इच्छा से, कभी किसी के प्रस्ताव पर अथवा किसी की भेंट स्वीकार करने के लिए विवाह किए थे। राम ने सम्राट के अनेक विवाह अपने शैशव में देखे थे। सम्राट इनके साथ विवाह कर, उन्हें दो–तीन दिन अपने राजमहल में रखकर वे उन्हें बाद में राजसी अन्तःपुर में धकेल देते थे। अन्तःपुर में जाकर वे न तो किसी की पुत्रियाँ होती थीं, न बहनें, न पत्नियाँ। वे अन्तःपुर की बंदिनी स्त्रियाँ होती थीं। कहने को तो वे सम्राट की पत्नियाँ, उपपत्नियाँ या रक्षिताएँ थी, पर उनको एक पत्नी का अधिकार कभी नहीं मिलता था। ऐसा महाविलासी राजा मानसिक दृष्टि से कमजोर ही वे एक भोगी, विलासी, कोमल, भीरू व स्वार्थी

राजा है। राज्य को बचाने के लिए वे किसी प्रकार का जोखिम मोल लेना नहीं चाहते। अपनी सुरक्षा उनके लिए सर्वोपरि है।

उनकी वृद्धावस्था की आवश्यकता ने उपेक्षित पुत्र राम के प्रति भी मोह उत्पन्न कर दिया था। दूरदर्शिता व स्पष्टवादिता की कमी के कारण वे विश्वामित्र को सहायता का वचन तो दे देते है परन्तु उस पर दृढ़ नहीं रह पाते हैं तथा राम को न ले जाने का आग्रह विश्वामित्र से नहीं कर पाते परन्तु मन ही मन सोचते हैं– ''दशरथ का मन कहीं अपने–आप में ही खीझ उठा, उन्हे इस प्रकार आतुर होकर वचन देने की क्या आवश्यकता थी। और सत्यवादी बनकर ही क्या करना है क्यों नहीं वे स्पष्ट कर देते कि वे राम को ऋषि के साथ नहीं भेजेंगे।''[1] वे एक असमर्थ व कमजोर शासक है। यहाँ तक कि उनकी प्रिय पत्नी तक उनकी बात नहीं मानती। इसलिए विश्वामित्र भी उन्हे धिक्कारते हुए कहते हैं''तुम जानते हो कि जितने भी ऋषि–मुनि, चिंतक, बुद्धिजीवी सत्य और न्याय की रक्षा के लिए रघुवंशियों की ओर देखा करते थे, उन सबको तुमने अपने आचरण से हताश कर डाला है। आज कोई भी व्यक्ति तुमसे न्याय के नाम पर कोई अपेक्षा नहीं रखता। यह मेरी ही मूर्खता थी कि मैं तुमसे इतनी बड़ी आशा लेकर आया कि तुम अन्याय और अत्याचार का विरोध करोगे। लोग कहते है कि दशरथ का राज्य उसके प्रासादों के भीतर भी शायद नहीं है, वहाँ भी कैकेयी का राज्य है।''[2]

दशरथ एक कमजोर व विलासी चरित्र का स्वामी है। तीन विवाह करने के पश्चात् भी उनके चरित्र में ठहराव न आया। वे नहीं चाहते थे कि प्रजा के सम्मुख उनकी छवि या उनका चरित्र खण्डित हो तथा कामुकतावश किए गए अनेक विवाह छिपाने के लिए उन्होने यह प्रचार करवाया कि ये सब विवाह उन्होने कामुकतावश नहीं बल्कि पुत्र प्राप्ति की कामना से किए हैं, तथा अंत में पुत्रेष्ठि यज्ञ के माध्यम

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –28
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –27

से चार–पुत्रों की प्राप्ति की कथा प्रचारित करवा दी। अयोग्य शासक तो वे थे ही, साथ ही साथ राज्य व प्रजा के प्रति उदासीनता का भाव था। प्रजा के प्रति हो रहे अन्याय व अत्याचार से उन्हे कोई सरोकार नहीं था। उनके पुत्र लक्ष्मण के उनके प्रति विचार बताते हैं कि उनके अपने पुत्र तक उनके न्याय, सत्ता व कार्य–प्रणाली से त्रस्त थे– ''सम्राट अब युद्ध नहीं करते, वर यात्रा चाहें वे कर लें। न्याय स्थापना भी राजकुमार राम ही करते है, सम्राट को अन्तःपुर के झगड़ों से ही फुरसत नहीं।''[1] भीरू स्वभाव के कारण वे मृत्यु के डर से सदा भय भीत रहे। अन्याय का विरोध करने का उन्होने जोखिम उठाना भी उचित न समझा, इसीलिए चारों आच्छादित राक्षसी उत्पात से, बहुलाश्व के अत्याचारों व रावण के आतंक से डरकर, उनका विरोध करने की अपेक्षा आँखें मूँद कैकेयी के आँचल में दुबके बैठे रहे।

कैकेयी

कैकेयी रामायण का एक मुख्य पात्र है। दशरथ की तीनों रानियों में वह सबसे छोटी है। उसकी गणना अपने समय की मानी हुई सुन्दरी स्त्रियों में होती है। लेखक ने कैकेयी के पात्र का मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रतिशोध किया है। मैथलीशरण गुप्त ने भी कैकेयी के पश्चाताप को बताकर उसके चरित्र को ऊपर उठाने का प्रयास किया था, किन्तु डॉ. कोहली ने मनोवैज्ञानिक सूत्रों के आधार पर इसका स्वाभाविक, सहज, विश्वसनीय व तार्किक आकलन किया है। यद्यपि उसका विवाह दशरथ से सहज परिस्थितियों में नहीं हुआ था, परन्तु वह जानती थी कि दशरथ उसके प्रेम व सौन्दर्य से वशीभूत हैं और वह दशरथ की इस कमजोरी का भरपूर लाभ उठाती थी। कैकेयी एक साधारण राजकुमारी नहीं थी। वह असाधारण थी। वह एक हठीली, उग्र, तेजस्विनी महत्वाकांक्षिणी व्यक्तित्व की मालकिन तो

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –38

थी ही, साथ ही साथ अपूर्व सौन्दर्य की स्वामिनी भी थी। वह एक देशभक्त व दृढ़ संकल्प स्त्री थी। उसने समाज की भलाई, देश के कल्याण, राष्ट्र–हित तथा अपने परिवार की रक्षा के लिए अपनी इच्छाओं का दमन कर प्रौढ़ दशरथ से विवाह किया तथा कैकेय देश की राजकुमारी होने का कर्तव्य निभाया।

कैकेयी एक अद्भुत सुंदरी थी– गोरा, रंग, कुछ–कुछ लालिमा लिए हुए, नीली गहरी झील जैसी आँखे, कुछ–कुल पीले लम्बे घने बाल, ऊँची तीखी नुकीली नाक, पतले लम्बें होंठ, लम्बा कद, स्वस्थ यौवना। वह कैकेय प्रदेश के उन्मुक्त आर्यों की पुत्री थी, मानव–वंश की स्त्री–विरोधी मर्यादाओं से अन्जान, स्वछन्द वातावरण में पली राजकुमारी थी। वह अन्य स्त्रियों के समान युद्ध में जाते समय, भगवान से उनकी रक्षा की प्रार्थना करने की अपेक्षा युद्ध में पति का कन्धे से कन्धा मिलाकर साथ देना पसंद करती थी। वह धनुषबाण का प्रयोग जानती थी, वह खड़ग चलाने में भी प्रवीण थी। इस सब विधाओं के साथ–साथ वह एक कुशल रथ संचालक भी थी। शंभर युद्ध में उसने दशरथ के प्राणों की रक्षा कर यह सिद्ध कर दिया था कि ईर्ष्या, द्वेष जैसे स्त्रीओचित व स्वाभाविक गुणों के साथ–साथ वह एक, बुद्धिमान, साहसी वीरांगना भी है। उसका भरत की राजगद्दी की कामना करना एक माँ की स्वाभाविक वृत्ति को दर्शाता है। जो पुत्र के सुरक्षित भविष्य को लेकर सशंय में है।

कौशल्या

कौशल्या मानववंशी राजा भानुमान की पुत्री है। वह राजा दशरथ की बड़ी रानी है। रघुवंशी कुल की पुत्रवधु हैं वह एक संस्कारों से युक्त परम्पराओं का निर्वाह करने वाली स्त्री है। वह पूर्णतः अपने श्वसुर, पति के अधीन रहकर अपने कर्तव्यों का निर्वाह करती रहीं। उनका अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं था। कौशल्या ने अपने, परिवार, कुल, श्वसुर की आज्ञा तथा इच्छाओं के लिए अपनी

सुख'सुविधाओं तथा अपने व्यक्तित्व का बलिदान कर दिया था। उनके श्वसुर अज ने उन्हे जयेष्ठ पुत्रवधु का पद, प्रतिष्ठा व सम्मान दिया। परन्तु उनकी मृत्यु के बाद जब दशरथ राज–सिंहासन पर बैठे तो उन्होने कौशल्या को पूरी तरह से त्याग दिया था। वह दरबार के उत्सवों की साम्राज्ञी थी। राम की माता थी, जो कि भावी उत्तराधिकारी थे, रघुवंश कुल की वधु भी थी। किन्तु न तो वे दशरथ की कांता थी, न प्रेमिका और न ही संगिनी।

कौशल्या ने दशरथ के हाथों अपने लिए सदा तिरस्कार, उपेक्षा तथा पीड़ा थी। उन्होने कभी दशरथ से अपने अधिकारों की भीख नहीं माँगी, बल्कि उन्होनें स्वयं को समझा लिया था कि वे इतने की अधिकारिणी है। राम विश्वामित्र से कहते हैं,–''जब से मैंने होश संभाला है, सदा यही देखा है कि मेरी माँ इस राजकुल की साम्राज्ञी होते हुए भी उपेक्षित, पीड़ित तथा दलित व्यक्ति का जीवन जीती रही है। कैकयी की दासियाँ मेरी माँ से अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती रही है।''[1]

कौशल्या एक आदर्श माँ, पतिव्रता स्त्री और एक आज्ञाकारी पुत्रवधु होने के साथ–साथ वे सहनशीलता, भावुकता, करूणा, त्याग तथा संस्कारों की प्रतिमूर्ति है।

सुमित्रा

सुमित्रा दीक्षा की गौण परन्तु शक्तिशाली पात्र है। वह सम्राट की दूसरी पत्नी तथा लक्ष्मण की माँ है। विवाह के उपरान्त जब उन्हे पता चला कि दशरथ पहले से ही विवाहित होने के साथ–साथ एक पुत्र के पिता भी हैं तो उन्होने दशरथ को यह जता दिया था कि पत्नी तथा पुत्र के होते हुए उनका दूसरा विवाह करना उन्हे जरा पसंद नहीं है। वह एक पत्नी का अधिकार छीनकर दूसरी पत्नी को देने को पाप मानती है। उनके मन में भी दशरथ के प्रति प्रेम भाव

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –37

नहीं था, वें मात्र दशरथ की पत्नी थीं और रहेगी परन्तु वह भी दशरथ की कांता, प्रेमिका नहीं बन सकती थी और न ही वह इसकी इच्छा रखती थी। उसका विवाह भी दशरथ से मजबूरीवश की हुआ था। उसके पिता मगध–नरेश ने दशरथ के सैन्य बल से घबराकर अपनी पुत्री सुमित्रा का विवाह दशरथ से कर दिया था। सुमित्रा भी अद्‌भुत सुंदरी थी। उसे देखकर आँखे चौंधिया जाती थीं।

सुमित्रा–''प्रज्वलित अग्नि थी, पूर्ण तीव्रता से जलती हुई अग्निकाष्ठा, वह आलोक भी देती थी और ताप भी।''[1] सुमित्रा को कौशल्या से पूर्ण सहानुभूति थी। सुमित्रा को राम से भी बहुत अधिक मोह था। सुमित्रा को दशरथ द्‌वारा राम व कौशल्या के प्रति किया गया उपेक्षित व्यवहार बिल्कुल पसंद नहीं था। वह न्याय की पक्षधर थी। उन्होने अपने पुत्र लक्ष्मण को भी अन्याय न सहने की शिक्षा दी थी। वह एक दृढ़ ह्रदय की स्त्री थी, इसलिए उसने अपने पुत्र लक्ष्मण को राम के साथ भेजने में लेशमात्र भी संदेह न दिखाया और तत्परता से उसे भेज दिया। उन्होने एक क्षत्राणी की भाँति सदा ही अन्याय का यथाशक्ति विरोध किया। वह सही अर्थों में क्षत्राणी है। उन्होने पत्नी धर्म का पालन करते हुए, कुलवधु की मर्यादा में रहकर निडर सिंहनी की भाँति अपना जीवन जिया। वह एक निडर, सत्य व स्पष्टवादी, न्यायपूर्ण, द्वन्द्व–रहित, स्वाभिमानी, आत्म विश्वास से ओत–प्रोत, दृढ़ चरित्र की स्वामिनी होते हुए भी कोमलता तथा सघनुभूति आदि मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण ह्रदय की नारी थी।

विश्वामित्र

वैसे तो दीक्षा में कई ऋषियों का उल्लेख है, किन्तु राजर्षि विश्वामित्र विशेष उल्लेखनीय कहे जा सकते है। ''दीक्षा' उपन्यास के तो मानो नायक ही विश्वामित्र है। राम–लक्ष्मण को पारम्परिक व अकादमिक शिक्षा तो गुरू वशिष्ठ से मिलती है। किन्तु राम–लक्ष्मण मे

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0 सं0 29

मानवतावादी चेतना, दलित–पीड़ित लोगों की मुक्ति की चेतना सामाजिक जड़ रूढ़ियों से अपमानित व अवमानित नारियों के उद्धार की चेतना, अत्याचार–अनाचार– अन्याय के विरूद्ध संघर्ष छेड़ने की चेतना की दीक्षा तो ऋषि विश्वामित्र ही देते है। इस दृष्टि से देखा जाए तो वे एक बीज पात्र है। 'दीक्षा' उपन्यास नरेन्द्र कोहली के रामकथा मूलक सभी उपन्यासों में से 'रामकथा' उपन्यास माला' अभ्युदाय' का प्रथम उपन्यास है। और 'दीक्षा' का प्रारम्भ ही ऋषि विश्वामित्र के सिद्धाश्रम से होता है। सिद्धाश्रम से होता है। सिद्धाश्रम में राक्षसों का आतंक बढ़ रहा था। प्रतिदिन कोई न कोई नृशंस घटना हो जाती थी। सिद्धाश्रम, और इस प्रकार सम्पूर्ण भारत वर्ष को राक्षसों के आतंक व अत्याचार से मुक्त करवाने के लिए वे अयोध्या जाते हैं और वहाँ से सम्राट दशरथ से राम–लक्ष्मण को माँग लाते है। राम–लक्ष्मण के विषय में उनको निरंतर सूचनाएँ मिलती रही है। और उनके पास जो शास्त्रास्त्रों का ज्ञान है उसे देने के लिए उन्हे उचित पात्रों की तलाश थी। राम–लक्ष्मण उन्हे सर्वथा उपयुक्त दिखते है। सिद्धाश्रम पहुँचने से पहले रास्ते भर वे राम–लक्ष्मण को मानवता की 'दीक्षा' देते है और जब पूर्णतया आश्वस्त हो जाते हैं तो राम–लक्ष्मण को दिव्यास्त्र भी देते है जो उनको उनके राक्षसोन्मूलन के अभियान में काम आएँगे। यहाँ विश्वामित्र एक ऐसे ऋषि है जो रात–दिन वैज्ञानिक आविष्कार में लगे रहते है और मानवता व धर्म व न्याय की रक्षा हेतु नित्य–नवीन शास्त्रास्त्रों का निर्माण–अविष्कार इत्यादि करते रहते है। विश्वामित्र आधुनिक चेतना संपन्न एक बुद्धिजीवी ऋषि है। उनकी सोच जड़ व रूढ़िवादी नहीं है। वे नये मानवतावादी–प्रगतिवादी विचारों का स्वागत ही नहीं करते, अपितु उनकों प्रोत्साहित करते है। उनके द्वारा प्रदत्त शास्त्रास्त्रों से राम–लक्ष्मण ताड़का, सुबाहु आदि का वध करते है और मारीच को भगा देते है। एक प्रकार से देखा जाए तो राम–लक्ष्मण ऋषि विश्वामित्र के ही मानस–पुत्र प्रमाणित होते है जो आगे की गतिविधियों

को आकार देते है। वे दूरदर्शी है। अपनी दूरदर्शिता तथा अनुभव का प्रत्यक्ष प्रमाण राम–लक्ष्मण को दी हुई दीक्षा है। वे राम–लक्ष्मण को वैचारिक धरातल पर रक्ष (आर्य) संस्कृति के बचाव के अभियान के लिए दीक्षित कर अपने दृढ़–प्रतिज्ञ होने का भी परिचय देते है।

विश्वामित्र नारी जाति के प्रति विशेष सम्मान की दृष्टि रखते हैं। उनका स्त्री जाति के प्रति दृष्टिकोण समाज से भिन्न है, उनके अनुसार स्त्री कभी पतिता नहीं होती, पतित होता है वह समाज जो उसे पतिता बनने को विवश करता है। इसलिए विश्वामित्र सामाजिक रूप से पतिता घोषित अहल्या के उद्धार के लिए राम को साधन बना अपना कर्तव्य करते हैं और अहल्या को समाज में पुनः सम्मानित स्थान दिलाते है।

विश्वामित्र एक विश्लेषक भी है, वे कहते है।–''वत्स! इतने दिनों के निरन्तर पीड़ादायक चिन्तन के पश्चात् मैं भी कुछ ऐसे निष्कर्षों पर पहुँचा हूँ कि लोगों द्वारा एक विशेष पद अथवा रूप की मान्यता पाने के लिए जब हम अपने व्यवहार तथा आचरण का नियंत्रण करते है तो मौलिकता से पूर्णतः असबद्ध होकर हम रूढ़ियों तथा प्रचलनों के दास होकर केवल शब्द बोलते है केवल अनुकरण करते है। ऋषि, चिंतक जन–नायक तथा लेखक के लिए यह एक अत्यंत घातक स्थिति है, राम! तब अपने चिंतन अपने न्याय, अपने धर्म, अपनी रचना के स्वामी वे स्वयं नहीं रह जाते, अन्य लोगों की इच्छा ही उनका नियंत्रण करती है। न्याय और क्रांति, दोनों से दूर हो गये, तब हम कर्म नहीं कर रहे होते, केवल लकीर पीट रहे होते है....[1]

तमाम विषम परिस्थितियों के होते हुए भी विश्वामित्र का चरित्र अपने चरित्र के बल पर दृढ़संकल्प के साथ पूरे उपन्यास को गति प्रदान करता है। उनका चरित्र कर्म–निष्ठा, कर्तव्य–परायणता, दायित्वों की पूर्ति, सत्य–निष्ठा, दृढ़ता, मौलिकता, दूरदर्शिता तथा मानवीय संवेदनाओं से ओत–प्रोत है। तथा इन्ही समस्त चारित्रिक

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –120

गुणों के आधार पर युग–चेतना को कल्याण मार्ग पर अग्रसर करना वे अपना कर्तव्य समझते है। समाज में प्रचलित अंधविश्वासों तथा पोषक कुरीतियों को नष्ट करने के लिए सशस्त्र शक्ति के अभ्युदय का प्रण व संकल्प ले उसे पूर्ण करते है।यह विश्वामित्र की ही दीक्षा का परिणाम था कि माता–पिता के वनगमन का आदेश उन्हे सुअवसर प्रतीत होता है जिससे वे मानवता का मार्ग प्रशस्त कर सके।

वशिष्ठ

विश्वामित्र का विलोम हमें गुरू वशिष्ठ में मिलता है। वे सम्राट दशरथ के राज–पुरोहित ही नहीं उनके गुरू भी है। वे विश्वामित्र के प्रतिद्वंद्वी ऋषि है। वे एक हठी, कट्टर धर्मपरायण तथा ऊँच–नीच, जाति–पाति में विश्वास रखने वाले ऋषि है। उनका चिंतन रूढ़िवादी, परम्परावादी जड़ व पुराना है। वे रघुकुल की मानववंशी परम्परा के पोषक है। जहाँ पुरूष सत्तात्मक समाज का प्राधान्य रहा है। वे निरन्तर सनातन धर्म, ब्राह्मणधर्म, वर्णाश्रम धर्म की बातें करते है। वे अपने विचार व चिंतन दूसरों पर आरोपित करते है और स्वतंत्र चिंतन व चेतना की उनके यहाँ कोई गुंजाइश नहीं है। उपन्यास के आरम्भ में ही राम के विवाह के सन्दर्भ में जो बातें वे करते हैं उनसे उनकी रूढ़िवादी विचारधारा प्रत्यक्ष हो उठती है।–''सम्राट का विचार अति उत्तम है। राम का विवाह कर दिया जाना चाहिए, वे ब्रह्मचर्य की आयु पूर्ण कर चुके है। किन्तु सम्राट को विवाह–संबंध स्थापित करते हुए, अपने वंश के अनुकूल समधी की खोज करनी चाहिए। इस विषय में यदि मेरी इच्छा जानना चाहें तो मैं कहूँगा कि सम्राट यदि किन्ही राजनैतिक कारणों से भी चाहें, तो राजकुमार का विवाह पूर्व के व्रात्यों में न करें, जिन्होने वैदिक कर्मकाण्ड को त्यागकर, स्वयं को ब्रह्मवादी चिंतन में विलीन कर भ्रष्ट कर लिया है। सम्राट! राजनीति का अपना महत्व है, किन्तु आर्य जाति के रक्त, कर्म, संस्कृति एवं विचारों की शुद्धता का महत्व उससे भी कहीं अधिक है। पूर्व के अतिरिक्त दक्षिण

में भी ऐसा कोई राजवंश मुझे नहीं दीखता, जो रघुकुल का उपयुक्त समधी हो सके।''[1]

ठीक इसी बिन्दु पर दशरथ की राजसभा में विश्वामित्र का आगमन होता है और उनका यह कथन दोनों ऋषियों का अन्तर स्पष्ट कर देता है–''मैं नहीं जानता तुम्हारी राजसभा में कितनी चर्चा राजनीति की होती है और कितनी ब्रह्मवाद की। पर संभव है कि तुम्हे यह सूचना हो कि जंबूद्वीप के दक्षिण में लंका नामक द्वीप में रावण नामक राक्षस बसता है।''[2]

वशिष्ठ आर्यवर्त्त को साम्प्रदायिक रूप देना चाहते है, वे आर्यों के प्रति कट्टर हैं वे नहीं चाहते कि कोई भी आर्य राजा आर्यावर्त्त से बाहर निकल कर किसी अन्य आर्येत्तर जाति के सम्पर्क में आये उनके ये विचार उनकी संकीर्ण व रूढ़ मानसिकता को दर्शाते है। उनका यह व्यवहार आर्य राजाओं को कूप–मंडूक बना रहा है। उनकी शक्तियाँ व क्षमताएँ निरन्तर अभ्यास के अभाव में क्षीण हो रही है।

वे दशरथ को विवश करते है कि राम का विवाह अपने जाति, कुल व वंशानुसार ही करें। यह उनकी रूढ़ मानसिकता का जीता–जागता प्रमाण है। ऋषि, विश्वामित्र से द्वेष रखते है, इसलिए वे सभा में आये विश्वामित्र का स्वागत करने का भी कष्ट नहीं उठाते। उनके हठी, द्वेषपूर्ण, अहंकारी व रूढ़ीवादी स्वभाव के कारण ही न केवल आर्यावर्त्त बल्कि पूरा जंबू–द्वीप राक्षसों के अत्याचारों से पीड़ित है।

सीरध्वज (राजा जनक)

सीरध्वज राजा जनक अपने समय के महान चिंतक व दार्शनिक राजा माने गये है। उनका ब्रह्मवादी चिंतन वशिष्ठ जैसे सनातनपंथियों को रूचता नहीं था।'' जनक एक प्रजा वत्सल राजा

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –17
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –19

थे। मिथिला एक धार्मिक उत्सव में अपने खेत में हल चलाते हुए एक बालिका मिली थी। जनक अपने किसी प्रजाजन का ही कार्य समझ उस बालिका को पाल–पोसकर बड़ा करते है। वही बालिका सीता है। सीता को अपने माँ–बाप की कमी जनक और सुनयना कभी खलने नहीं देते। सीता राजा जनक को खेत में से मिली थी, अतः सब उसे अज्ञातकुलशीला के रूप में ही मानते है। फलतः तत्कालीन परम्पराओं के हिसाब से कोई भी क्षत्रिय राजकुमार उसके वरण हेतु आगे नहीं आता है। राजा जनक को अपनी पुत्री के विवाह की चिन्ता खाये जाती है, अतः वे अपने गुरू की मंत्रणा से सीता को वीर्यशुल्का घोषित करते है। उस समय भी राजा जनक अपनी पुत्री को इसके पक्ष–विपक्ष के बारे में भलीभांति समझा देते है। संक्षेप में जनक एक न्याय–विवेक संपन्न दार्शनिक साधु राजा है।

सीरध्वज मिथिला के सम्राट होने के साथ–साथ एक ऋषि भी थे इसलिए सम्मेलन में उनके सम्मिलित होने का अर्थ या धन तथा सुरक्षा की दृष्टि से पूरी निश्चिंतता। सीरध्वज एक सज्जन व सरल व्यक्ति थे। वे अपने आतिथ्य धर्म के प्रति पूर्णतः समर्पित थे, इसलिए सम्राट होते हुए भी इंन्द्र के स्वागत् के लिए आश्रम को सुसज्जित करने में स्वय गौतम का सहयोग दिया। वे एक बुद्धिमान व अनुभवी सम्राट है, अमितलाभ द्वारा की गई चाटुकारिता को तुरन्त भी कर स्पष्ट रूप से उन्हे अपने काम पर ध्यान देने को कहते है।

वे एक कुशल शासक थे उनके राज्य में अपराधों की संख्या न के बराबर थी। सीरध्वज ने एक अज्ञात कन्या को अंगीकार कर अपने कारूणिक तथा मानवीय संवेदना से ओत–प्रोत हृदय के स्वामी होने का परिचय दिया है। एक साधारण पिता की भाँति उन्हे भी अपनी पुत्री के विवाह की चिंता थी। अपनी लाडली पोषिता पुत्री को वे आर्येत्तर जाति में देना नहीं चाहते थे। यहाँ एक पिता की चिंता और आर्य सम्राट का अहम दोनों ही परिलक्षित होते है।

राम के द्वारा अजगव के टूटते ही अपनी पुत्री के लिए श्रेष्ठ वर के रूप में राम को ठीक उसी प्रकार गले लगाते हैं जिस प्रकार प्रकार भँवर में फँसे व्यक्ति को खेवनहार मिल जाता है–''सीरध्वज प्रेम के आवेश में आन्दोलित, अपनी राज–मर्यादा को भुलाकर प्रायः भागते हुए आगे बढ़े और उन्होने राम को अपनी भुजाओं में भरकर कंठ से लगा लिया।''[1]

अहल्या

अहल्या आश्रम के कुलपति गौतम ऋषि की पत्नी तथा एक पुत्र शतानन्द की माता है। वह बुद्धिमती, विदुषी व्यवहारकुशल गृहणी है। अप्सरा जैसा सौन्दर्य, दृढ़–चरित्र, गठा हुआ परिश्रमी शरीर, चेहरे पर सात्विक तेज, बड़ी–बड़ी आँखों में संतुष्टि का भाव उसके व्यक्तित्व को परिभाषित करते थे। वह एक कोमल भावनाओं, प्रेम, ममत्व तथा संवेदनाओं की प्रतिमूर्ति एक पतिव्रता स्त्री थी।

अहल्या का चरित्र हर उस नारी का प्रतिबिंब है जो पुरूष बल से तो हार जाती है परन्तु उनका मनोबल उन्हे पुनः प्रतिष्ठा दिलाने से नहीं रोक सकता।

इंद्र द्वारा उसका सतीत्व भंग किया जाना, उसका अपने पति व पुत्र से पच्चीस वर्षों तक अलग रहना इंद्र जैसे धन, संपत्ति, सत्ता, शक्ति, मान– सम्मान, पद आदि की दृष्टि से सब पर भारी पड़ने वाले व्यक्ति से प्रतिरोध लेना उसकी मानसिक दृढ़ता का प्रतीक है।

वह सहनशील है, उक्त पंक्तियों से उसके चरित्र की उदारता व त्याग की पराकाष्ठा का भान होता है–''शारीरिक असुरक्षा, असुविधा, मानसिक यातना, भावात्मक क्लेष और न जाने क्या–क्या सहना पड़े। किन्तु मैं अपने पति का भविष्य नष्ट नहीं कर सकती है।'' अहल्या अपने पत्नी धर्म व मातृधर्म के दायित्वों का पूर्णतः निर्वाह करने वाली पतिव्रता और ममतामयी स्त्री है। अहल्या अपनी पीड़ा में जलकर भस्म

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, दीक्षा, पृ0सं0 – 184

नहीं हुई थी। बल्कि उसका तेज और अधिक निखर गया था। असके जीवन का एकमात्र ध्येय था इंद्र को दण्ड दिलवाना व अपना प्रतिरोध लेना। पच्चीस वर्षों की असाधारण काल–यात्रा ने निर्दोष अहल्या, को एक युवती से अलौकिक महिमामयी, तपस्या से तपी हुई आकृति, तथा यातना व साधना से प्राप्त पवित्रता का प्रतीक बना दिया था। लेखक ने अहल्या दृढ़ चरित्र द्वारा समाज को यह संदेश देने की कोशिश की है कि नारी शारीरिक रूप से अबला भले ही हो परन्तु उसका मानसिक सम्बल उसे सबला बन देता है।

गौतम

गौतम मिथिला के आश्रम के कुलपति है। वे अहल्या के पति व शतानन्द के पिता है। वे बुद्धि, तर्क, ज्ञान पिपासु, सहिष्णुता तथा ईमानदारी आदि गुणों से ओत–प्रोत एक बुद्धिजीवी ऋषि है।

आश्रम में आयोजित सात दिनों के सम्मेलन में मुख्य अतिथि के रूप में पधारे देवराज इंद्र उनकी पत्नी अहल्या से दुष्कर्म कर उसे पतिता घोषित कर देते है, परन्तु चरित्र में मौलिक क्रांति का सर्वथा अभाव होने के कारण तत्काल इंद्र का विरोध नहीं कर पाते है तथा दण्ड स्वरूप अपनी सर्वथा निर्दोष पत्नी से पच्चीस वर्षों का वियोग सहते है।

वे अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह तो बखूबी करते हैं परन्तु अपने पति व पिता धर्म का निर्वाह ठीक ढंग से न कर सके परिणाम स्वरूप अहल्या के साथ दुष्कर्म हुआ। पत्नी के पतिता घोषित किए जाने पर भी उन्हे अहल्या के चरित्र की पवित्रता व उसके पतिव्रता होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं था इसलिए उन्होने मन से अहल्या का त्याग नहीं किया। किन्तु अपने कुलपति पद का त्याग करना उचित समझा। अपनी पत्नी का पक्ष लेकर उन्होने इंद्र को दण्डित करने का अभियान आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार गौतम एक पति धर्म का उदारतापूर्वक निर्वाह करने वाले उदार चरित्र के स्वामी है। वे कहते है—''तुम मेरी धर्मपत्नी और पूर्णतः मेरे योग्य पत्नी हो, तुम्हे पतित करने का साहस कोई नहीं कर सकता। तुम पूर्णतः शुद्ध, स्वच्छ व पवित्र हो।''

दीक्षा में निरूपित गौण पात्र

उपर्युक्त प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त अनेक गौण पात्र भी हमें दीक्षा में मिलते है।

(प) पौराणिक गौण पात्र।

(पप) काल्पनिक गौण पात्र।

यहाँ केवल उनका उल्लेख भर किया जाएगा—

(1) **पौराणिक गौण पात्र** : दीक्षा में उल्लिखित गौण पात्र—मुनि अजानुबाहु, बहुलाश्व, ताड़का, मारीच, सुबाहु, भानुमान, अज, शम्बर, भरत, शत्रुघ्न, सहस्त्रार्जुन, परशुराम, आचार्य विश्वबंधु, प्रथुसेन, देवराज इंद्र, आचार्य अमितलाभ, आचार्य ज्ञानप्रिय, शतानंद।

(2) **काल्पनिक गौण पात्र** : जिस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकार यथार्थ— परिवेश के निर्माण हेतु कुल काल्पनिक सामाजिक पात्रों की सृष्टि करता है, ठीक उसी तरह पौराणिक उपन्यास कार भी यथार्थ परिवेश निर्माण, विश्वसनीयता, जीवन्तता आदि की सृष्टि के लिए कुछ काल्पनिक सामाजिक पात्रों का निर्माण करता है। डॉ. कोहली द्वारा प्रणीत 'दीक्षा' में भी हमें ऐसे कई पात्र मिलते है, जैसे— पुनर्वसु, सुकंठ, गहन, गगन, सत्यप्रिय, वनजा, आर्या, अनुगता, सदानीरा आदि।

उद्देश्य

प्रकृति का प्रत्येक कार्य सोद्देश्य होता है। साहित्य सृजन भी निरूद्देश्य नहीं होता। यह उपन्यास भी सृजन के उद्देश्य की पूर्ति

करता है। उपन्यासकार कोहली जी का 'दीक्षा' लिखने का उद्देश्य पौराणिक मूल्यों की व्याख्या नहीं बल्कि समकालीन समस्यायें है जो लेखक के हृदय में उमड–घुमड़ रही थी।

नरेन्द्र कोहली जी ने 'दीक्षा में तत्कालीन राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण आधुनिकता के परिपेक्ष्य में किया है। आधुनिक भाव–बोध से सम्पन्न होने के कारण यह उपन्यास समूचे समाज का मार्गदर्शन करता है।

नरेन्द्र कोहली जी के सृजक मन ने रामकथा के जिस रूप को देखा था, उसके चार खण्ड बन रहे थे। पहला खण्ड 'दीक्षा' है जिसमें विश्वामित्र ने अपने चिंतक पक्ष को साकार करते हुए राम को पीड़ित समाज का उद्धार करने के लिए दीक्षित किया। इसमें ऋषि विश्वामित्र द्वारा राम को अन्याय के विरूद्ध क्रांन्ति व संघर्ष की दीक्षा दी है।

इस उपन्यास के द्वारा नरेन्द्र कोहली जी ने समाज को विकासोन्मुख बनाने के लिए वर्ग–संघर्ष की समाप्ति, भाग्यवाद का खण्डन, कर्म की महत्ता का प्रतिपादन, विश्वशांति और मानवतावाद की स्थापना की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है। ये समस्याएँ आधुनिक समाज की समस्याएँ हैं तथा 'दीक्षा' के द्वारा उपन्यासकार कोहली जी ने इन समस्याओं का समाधान खोजने की कोशिश की है। उन्होने हिंसा अहिंसा, मनोबल– शस्त्रबल, मनुष्यता–पशुता, संबंधित प्रश्नों को उठाकर उनके समाधान खोजने का प्रयत्न किया है। उन्होने इस सत्य पर बल दिया कि अहिंसा और सहनशीलता एक सीमा तक ही ग्राह्य है। अन्याय की पराकाष्ठा की स्थिति में अन्ततः मनुष्य को शस्त्रबल तथा भुजबल क आश्रय लेना ही पड़ता है। कोहली जी का मानना है कि जब तक मनुष्य निष्क्रिय बैठा अन्याय सहता रहेगा तब तक समाज का उद्धार संभंव नहीं होगा। मानव को पौरूष, शौर्य एवं ओज का प्रदर्शन कर अपने अधिकारों के लिए लड़ना होगा, इसके लिए वे आवशयकता पड़ने पर अहिंसा तथा

गाँधीवाद का विरोधी भी करते है। उपन्यासकार की मान्यतानुसार जीवन में कर्म की श्रेष्ठ है। मनुष्य का नियामक भाग्यवाद नहीं अथवा कर्मठता एवं भुजबल है।

शीर्षक की सार्थकता

1971 ई. में जब नरेन्द्र कोहली जी ने 'दीक्षा' लिखी तब नरेन्द्र कोहली जी 1971 ई. के युद्ध से बहुत प्रभावित थे, पाकिस्तानी सेनाओं द्वारा बुद्धिजीवियों की हत्याओं का प्रसंग उनके मन में बहुत गहरे उतर चुका था। सूचनाएँ संवेदनाएँ बन गई थीं। उनके मन में रामकथा के राक्षसों द्वारा ऋषियों को मारने और खाने के प्रसंग जीवित हो उठे। उनका मन बार–बार विश्वामित्र की ओर भागने लगा, वे युग चेतना के लिए विश्वामित्र की चिन्तनपूर्ण दृष्टि की और आकर्षित हुए और विश्वामित्र रूपी पात्र उनके उपन्यास से सक्रिय हो उठा। विश्वामित्र नाम के अनुरूप विश्व शांति व सक्रिय चिंतन का प्रतीक बन गये। 'दीक्षा' लिखते समय राम कर्मयोगी यानि कर्म का प्रतीक बन कर उभरने लगे। उपन्यास लिखते समय उनके मन में तत्कालीन परिवेश था, उसकी मान्यताएँ थी, एक प्रख्यात कथा का ढाँचा था। 'दीक्षा' द्वारा उन्होने अपने युग की समस्याओं को अपने युग की कथा के माध्यम से अपने युग के लोगो तक अपनी टिप्पणियों के साथ पहुँचाने का प्रयत्न किया। उस कथा की घटनाओं तथा चरित्रों को समकालीन मनोविज्ञान, चिंतन व संस्कृति में ढालना था। उस समय राक्षस अपना साम्राज्य तथा अपना शोषण चक्र बड़े योजनाबद्ध ढंग से विकसित कर रहे थे। उनके दाँत सिद्धाश्रम पर भी लगे हुए थे। राक्षसों के पास शारीरिक शक्ति थी, क्रूर मास्तिष्क था अमानवीय मूल्य थे, अमर्यादित धन था और उन उपकरणों से उन्होने शासन तंत्र को पूर्णतः निस्तेज बना रखा था।

उन्ही दिनों नरेन्द्र कोहली ने समाचार पत्रों में एक समाचार पढ़ा बिहार के एक गाँव में तथाकथित कुलीन राजपूतों ने हरिजन

कुमारियों से आत्मसमर्पण चाहा उनके द्वारा तिरस्कृत होने पर उनकी झोपड़ियों में आग लगा दी। पुरूषों को जीवित जला दिया, स्त्रियों का शील भंग किया और उन्ही को झोपड़ियों की आग में तपाकर लौह शलाकाओं से उन हरिजन स्त्रियों के गुप्तांगो पर उनकी जाति चिह्नित की। यह वही बिहार था जहाँ राजा सीरध्वज जनक का राज्य था। सिद्धाश्रम के आस–पास होने वाले अत्याचारों का स्वरूप उनके मन में स्पष्ट होने लगा था। सिद्धाश्रम के आस–पास होने वाले अत्याचारों का स्वरूप उनके मन में में स्पष्ट होने लगा था। बहुलाश्व के रूप में भ्रष्ट सेनानायक जो रिश्वत लेकर अपराधियों को छोड़ देता है। या उनके अपराध को ही अनदेखा कर देता है। उनके मन के भीतर बैठा विश्वामित्र अपना सिर उठाने लगा था। वे अपने उपन्यास के माध्यम से लोगों तक अपनी भावनाएँ अपने अपने विचार व अपनी संवेदनाएँ पहुँचाना चाहते थे। अपने उपन्यास 'दीक्षा' के माध्यम से उन्होने अपनी बात को कभी अपनी सृजन–प्रक्रिया की गुत्थियाँ सुलझाने की प्रक्रिया में कहा, कभी किसी के प्रश्नों व जिज्ञासाओं का उत्तर देते हुए कहा। उनकी रचनाओं के पात्र जो कहते है वस्तुतः कहते तो वही है। 'दीक्षा' में जो कुछ भी कहा गया है प्रत्येक उक्ति पाठकों के, समाज के प्रश्नों जिज्ञासाओं का समाधान दे सकें तथा उनके प्रश्नों की तृषा को अपने उत्तरों से तृप्त कर सकें।

'दीक्षा' लिखते समय उनके मन में समाज के ज्वलंत प्रश्नों के उत्तरों के साथ विश्वामित्र प्रस्तुत थे, वे प्रत्यक्ष थे परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से कोहली जी अपना चिंतन पक्ष पाठकों तक पहुँचा रहे थे।

'विश्वामित्र प्रत्यक्ष हो गये थे– वे उच्च मानवीय मूल्यों का चिंतन कर रहे थे, किंतु कर्म के साधन उनके पास नहीं थे और साधारण जनता जो उचित नेतृत्व के अभाव में अपना आत्मविश्वास खो बैठी थी और राक्षसों से त्रस्त–आतंकित थी।''[1]

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, नरेन्द्र कोहली ने कहा (मेरी रचना प्रक्रिया) पृ0सं0 – 40

''मेरे मन में राम कभी भी 'राम' राम नहीं रहा। वह उपेक्षित माँ कौशल्या का पुत्र है, जो चरित्र तथा मानवीयता की प्रत्येक अग्निपरीक्षा में खरा उतरने पर भी वन में धकेल दिया गया।''[1]

नरेन्द्र कोहली जी ने विश्वामित्र के बारे में लिखा–''विश्वामित्र जहाँ कहीं होगा, वह मानव का हित सोचेगा, अतः अनायास या सायास, पूँजी के बल परशोषण करने वाले, सोने की लंका के स्वामी का शत्रु हो जाएगा। रावण विश्वामित्र पर प्रहार ही करेगा, और विश्वामित्र को अपने पक्ष में लड़ने के लिए राम को दीक्षित करना ही होगा।''[2]

विश्वामित्र राम को अयोध्या से सिद्धाश्रम ले आये, विश्वामित्र ने रास्ते भर राम को समाज कल्याण की दीक्षा दी। विश्वामित्र के चिंतन तथा राम के कर्म ने मिलकर ताड़का के आंतक का अंत किया, आश्रम–वाहिनी का निर्माण किया, जनता में आत्म–विश्वास जगाया और राक्षसों का नाश किया।

ताड़कावन की पीड़ित स्त्रियों को गगन जैसे सहनशील, उदार, तथा वीर व्यक्ति की संरक्षण में छोड़ा अहल्या का उद्धार, सीता के लिए धनुर्भग, यह अंतिम चरण था 'दीक्षा' का। राम की 'दीक्षा' यही समाप्त नहीं हुई। सीता–वरण के लिए राम को कड़ी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना था, बल और शक्ति की, पिता से स्वतंत्रता की, प्राय–विरोधी राजा सीरध्वज से नये संबंध जोड़ने की, जाति–कुल–गोत्र के भूत के विरूद्ध लड़ने की ।इन सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के लिए 'दीक्षा' समय समय पर विश्वामित्र द्वारा राम को दी गई और राम ने इन शिक्षाओं को पूर्णतः अंगीकार कर कार्यनिष्ठ योगी की तरह उन्हे पूर्ण करः उनके अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाया। इसलिए अनुसंधात्री के अनुसार 'दीक्षा' उपन्यास का शीर्षक पूर्णतया, सार्थक एवं प्रसंगानुकूल है।

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, नरेन्द्र कोहली ने कहा (मेरी रचना प्रक्रिया) पृ0सं0 28
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, नरेन्द्र कोहली ने कहा (मेरी रचना प्रक्रिया) पृ0सं0 28

अंततः निष्कर्ष यह निकलता है कि 'दीक्षा' के कथानक में नरेन्द्र कोहली जी ने रोचकता, संभाव्यता और मौलिकता आदि तथ्यों का सफल प्रयोग किया है। 'दीक्षा' उपन्यास का शीर्षक पूर्णतयाः इसके अनुरूप है। 'दीक्षा' एक ऐसी रामकथा आधारित उपन्यास है जो सामयिक लौकिक, तर्कसंगत तथा प्रासंगिक है। इसके कथानक में राक्षसों के उत्पात से लेकर परशुराम की पराजय तक की कथा है। इसमें विश्वामित्र द्वारा राक्षसी आतंक

के विरूद्ध राम को दीक्षित किया जाता है। ताकि राम विश्वामित्र के चिंतन को अपने कर्म में ढाल सकें। कोहली जी ने दीक्षा में राजनीतिक अव्यवस्था, अहल्या प्रसंग तथा अजगव प्रसंग बखूबी चित्रित किए गए है।

उन्होने 'दीक्षा' की घटनाओं तथा चरित्रों को समकालीन मनोवैज्ञानिक चिंतन तथा संस्कृति में ढाला है। वे कहते है कि रामायण की कई बातें उन्हे अप्रासंगिक लगती है इसलिए उन्होने कथा की मौलिकता के ध्यान में रखते हुए अपना पक्ष पाठकों के सामने रखा जाता है। जैसे ने कहते है। कि–''मेरा मन इस बात को स्वीकार नहीं करता था कि दशरथ की कोई संतान नहीं थी। इसीलिए उन्होने अनेक विवाह किए और पुत्रेष्ठि यज्ञ द्वारा चार पुत्र प्राप्त किए, न मैं यह मान सका हूँ कि राम लक्ष्मण बिना किसी योजना के जनकपुर पहुँच गये और संयोग से सीता का विवाह राम से हो गया। चारों भाइयों के विवाहित होने का भी मुझे कहीं कोई प्रमाण नहीं मिला। अहल्या का पत्थर हो जाना – इत्यादि बातें भी मैं कभी स्वीकार न कर सका और इन सभी बातों को मैने 'दीक्षा' में स्वीकार नहीं किया है।''[1] उपरोक्त सभी बातें उन्होने 'दीक्षा' में स्वीकार नहीं किया है परन्तु अपना तर्क रखकर बड़ी सहजत पूर्वक उन संदर्भों को पाठकों के समक्ष रखा है।

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, मैं और मेरा लेखन, नरेन्द्र कोहली ने कहा, पृ0सं0 – 29

‘दीक्षा’ के सभी पात्रों के चरित्र–चित्रण के लिए उन्होने रामायण का गहन अध्ययन कर उनके चरित्र की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विशेषताओं का वर्णन किया है।

‘दीक्षा’ का उद्‌देश्य भी सफल रहा है जिसमें कोहली जी ने तत्कालीन, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण आधुनिकता के परिपेक्ष्य में अति सफलता पूर्वक किया है। कथा का आधार पौराणिक होते हुए भी यह उपन्यास आधुनिक समाज का मार्गदर्शन करता है।

*****

दीक्षा : युग चेतना

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी कृति में किसी एक समाज को, किसी एक युग को अभिव्यक्त कर देता है। साहित्यकार अपने समय के जीवनानुभवों द्वारा चेतना के स्तर पर जिस जागरूक चिंतन को जन्म देता है अन्ततः वही चेतना है। युग चेतना कलाकार अपनी लेखनी से अपनी–अपनी दृष्टि के अनुसार युग–विशेष की परिस्थितियों को समझने और अपनी–अपनी शक्ति के अनुसार उन्हे बदलने तथा उन्हे चित्रित करने का प्रयास करता है। इस प्रयत्न में युग–चेतना कलाकार कभी–कभार अपने संस्कारगत् मोह के कारण प्राचीन मान्यताओं और परम्पराओं को ही नये रूप में ढालता है। समर्थ साहित्यकार अपनी बात इस तरह से अभिव्यक्त करता है कि पाठक उसे उसके समूचे रूप से ग्रहण कर सकें। ऐसी परिस्थिति में युग–विशेष की सामूहिक चेतना उसे प्रभावित करती रहती है। यह प्रभाव साहित्यकार के अपने समय की परिस्थितियाँ संवेदनशील हृदय को मथने में और प्रेरित करने में सहायक सिद्ध होती है तो साहित्यकार उन्हे अपने निजी व्यक्तित्व एवं प्रतिभा से कलात्मक अभिव्यक्ति देकर शाश्वतता प्रदान करता है। मौलिक साहित्य के सृजन की यह प्रक्रिया सदियों से चली आ रही है। 'रामायण' तथा 'महाभारत' जैसे महाकाव्य आज भी अपनी सार्थकता बनाये हुए है। इन महाकाव्यों के कथातत्वों पर आधृत कृतियों में युग–चेतना को सहेजकर अभिव्यक्ति देने में रचनाकारों ने अपनी–अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। किसी भी साहित्य के लिए यह नितांत जरूरी है कि वह अतीत से संजीवनी शक्ति प्राप्त करते हुए भी भविष्य की ओर निर्देश करे। इसी धरातल पर इतिहास से साहित्य अपने अलगाव का औचित्य प्रमाणित करता है। यह प्रक्रिया अपने युग की पुकार के अनुरूप एक ही पात्र को अलग–अलग रूप में अभिव्यक्त करती है। जैसे कि बाल्मीकि की 'रामायण' में राम वही

नहीं है जो तुलसी की 'रामचरित मानस' के है या मैथिली शरण गुप्त के साकेत के हैं अथवा नरेन्द्र कोहली जी के 'अभ्युदय' के है। अतः वर्ण विषय की ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए जब डॉ. नरेन्द्र कोहली जी आधुनिक संदर्भों से जोड़कर जब अपने साहित्य को मौलिक तथा आधुनिक नवीन स्वरूप देते है। तब उनके साहित्य की पृष्ठभूमि में युग–चेतना महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। डॉ. नरेन्द्र कोहली के रामकथा आधारित उपन्यासों की श्रंखला 'अभ्युदय' के पहले उपन्यास 'दीक्षा' की कथा वस्तु युग–चेतना का श्रेष्ठ उदाहरण है।

युग–चेतना अर्थ एवं स्वरूप :

''युग–चेतना'' शब्द ''युग'' और ''चेतना'' ऐसे दो शब्दों के योग से बना हुआ है। अतः युग चेतना शब्द के अर्थ को समझने से पहले ''युग'' और ''चेतना'' शब्दों के जान लेना अतिआवश्यक होगा। यों तो ''युग'' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है, लेकिन 'चेतना' के साथ जुड़कर जो अर्थ ध्वनित होता है वह यह है– काल या समय अथवा काल की एक विशिष्ट अंतरावधि। ''युग'' शब्द काल सापेक्ष है। समय सापेक्ष है। प्रत्येक युग विशेष की अपनी अलग चेतना होती है और युग बदलने के साथ वह भी परिवर्तित होती रहती है। प्रत्येक युग के साहित्य में उस युग की परिस्थितियों और जनता की मनोवृत्तिय प्रतिबिंबित होती है। युग चिंतन की उचित अभिव्यक्ति के माध्यम से ही कोई भी कृति अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकती है।

''युग–चेतना'' को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है –– ''काल या युग विशेष में किसी व्यक्ति विशेष अथवा जन सामान्य के चित्त की अनुभूति ही युग–चेतना है।''[1]

---

[1] डॉ0 पुष्पा ठक्कर, दिनकर काव्य में युग चेतना, पृ0सं0– 3

यह युग–चेतना का शाब्दिक अर्थ हुआ। इसी बात को इस तरह भी कहा जा सकता है–''युग विशेष की प्रबुद्धता का स्तर'' यानि युग–चेतना।''[1]

यों तो अर्थ स्पष्ट हो जाता है किन्तु यह अर्थ वास्तव में उतना स्पष्ट नहीं है। युग विशेष शब्द अपने आप में बड़ा उलझनपूर्ण हैं क्योंकि युग की अवधि निश्चित नहीं होती। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार हम चार युगों से परिचित है–सत, त्रेता, द्वापर और कलि। फिर भी यह निश्चित है कि युग–चेतना में प्रयुक्त युग की कालावधि इन चार युगों की अवधि के आधार पर निर्धारित नहीं की जा सकती। बारह वर्ष के समय को भी युग की संज्ञा से से अभिहित किया जाता है। इन अर्थों को देखने और समझने के पश्चात भी युग शब्द और उसकी समय मर्यादा को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं कर पाते है। इस प्रकार युग की कोई अवधि निर्धारित नहीं की जा सकती। फिर भी अध्ययन अध्यापन अथवा समझने–समझाने की सुविधा के लिए हम ऐसा कहते है कि अमुक से अमुक समय तक अमुक युग रहा है। विशेषतया साहित्य के इतिहास में युग की इस अवधि को निश्चित करने के लिए या तो किसी प्रमुख साहित्यकार जैसे–द्विवेदी युग, प्रेमचन्द्र युग आदि का सहारा लिया जाता है। या फिर किसी विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्ति जैसे– वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, छायावाद, प्रगतिवादी आदि का।

''चेतना'' शब्द की उत्पत्ति ''चित्त'' से हुई है जिसका अभिप्राय है–''चित्त'' या ''मन''। अतः चेतना का शाब्दिक अर्थ ''चित्त'' या ''मन'' के विशेष भाव या उनकी विशेष अनुभूति से है। वृहद हिन्दी कोश में ''चेतना'' का अर्थ चैतन्य, रमन, होश, याद, बुद्धि, चेतना, जीवन शक्ति, जीवन, बुद्धि–विवेक से काम लेना, सोचना विचारना आदि दिया गया है।[2] यही चेतन के पर्यायवाची शब्द के रूप में आत्मा, जीव, परमेश्वर

---

[1] डॉ0 श्याम शंकर शुक्ल ''रसाल'' भाषा शब्द कोष, सम्पादक, पृ0सं0 – 1296
[2] सम्पादक–कालिका प्रसाद, वृहद हिन्दी कोष, पृ0सं0– 439

मनुष्य, प्राणी, मन, प्राणयुक्त चैतन्य आदि विशिष्ट शब्दों का समावेश किया गया है। अभिनव पर्यायवाची कोश में–चेतना को संज्ञा–स्त्रीलिंग बताया गया है। जिसके समानार्थी शब्दों में चेत, होश, ज्ञान, बोध आदि की गणना की गई है।[1]

''चेतना'' शब्द अर्थ की दृष्टि से विस्तृत एवं व्यापक है। ''चेतन मानस की प्रमुख विशेषता चेतना है। अर्थात वस्तुओं, विषयों एवं व्यवहारों का ज्ञान ''चेतना'' की प्रमुख विशेषताएँ है– निरंतर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह, इस प्रवाह के साथ–साथ विभिन्न अवस्थाओं में एक अविच्छिन्न एकता और सहचर्य। चेतना का प्रवाह हमारे अनुभव वैचित्र्य से प्रभावित होता है। और चेतना की अविच्छिन्न एकता हमारे व्यक्तिगत तादात्मय के अनुभव से है। विभिन्न विषयों की अलग–अलग समय पर चेतना होने पर हम सदा यह भी अनुभव करते हैं कि अमुक वस्तु देखी थी।[2]

मस्तिष्क कभी–कभी तो शीघ्र ही अर्थ ग्रहण कर लेता है और कभी बाद में धरोहर के रूप में ग्रहित विचारों के चिंतन मनन द्वारा उनके अर्थों को ग्रहण करता है। परन्तु साहित्य में युग–चेतना का अर्थ इस रूप में न लेकर एक अन्य ही स्तर पर घटित किया जाता है। मनोविज्ञान के अनुसार–''चेतना मानव में उपस्थित वह तत्व है जिसके कारण ही हम देखते, सुनते, समझते व अनेक विषयों पर चिंतन करते है। इसी कारण हमें सुख–दुःख की अनुभूति भी होती है और हम इसी कारण अनेक प्रकार के निश्चय करते है तथा अनेक प्रकार के पदार्थों की प्राप्ति के लिए चेष्टा करते है।[3] ''चेतना'' मनुष्य की वह विशेषता है जो उसे जीवित रखती है और जो उसे व्यक्तिगत विषय में तथा अपने वातावरण के विषय में ज्ञान प्राप्त कराती है। ''चेतना'' का प्रवाह जीवन का द्योतक है। अहं इस चेतना की

---

[1] सम्पादक–सत्य पाल गुप्त, अभिनव पर्यायवाची कोष, पृ0 सं0– 28

[2] डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोष, भाग–1, पृ0 सं0– 319

[3] डॉ0 राम प्रसाद त्रिपाठी, हिन्दी विष्व कोष, खण्ड–4 पृ0सं0– 282

अभिव्यक्ति है। एक ओर जहाँ चेतना जीवन के भार को वहन करती है तो दूसरी ओर वह जीवन के प्रसंग में सक्रिय भाग भी लेती है। सक्रिय भाग का आशय निष्क्रियता नहीं है, और न ही उसका यह लक्ष्य है कि ''चेतना'' केवल ऊर्ध्वमुखी हो, अर्न्तमुखी न हो। ऊर्ध्वमुखी होने में ही यह नीहित है कि जीवन का अस्तित्व–अंर्तमुखी भी है। विकास का क्रम भी अपने वैज्ञानिक अर्थ में यह स्थापित करता है कि विकास किसी एक बिंदु अथवा किसी एक स्थिति से होगा।''[1]

''युग–चेतना'' में ''चेतना'' शब्द भी युग की तरह ही अत्यंत उलझनपूर्ण है। अब प्रश्न यह उठता है कि हम किसकी चेतना को युग चेतना माने। एक बात तो स्पष्ट है कि चेतना सदा चित्र में प्रवर्तमान रहती है। इसी से बाह्य पदार्थों का ज्ञान होता है। इसी चेतना के अद्भुत होने से आंतरिक अनुभूतियाँ होती है। मनोविज्ञान के अनुसार ''चेतना'' मन की एक स्थिति है जिसके अर्न्तगत बाह्य जगत के प्रति संवेदनशीलता गहरी अनुभूति का आवेश चयन या निर्माण की शक्ति इन सबके प्रति चिंतन प्रवर्तमान रहता है। ये सब बातें मिलकर किसी व्यक्ति की पूर्ण चैतन्य अवस्था का निर्माण करती है। वास्तव में 'चेतना' मनुष्य का अनिवार्य अंग है।[2]

सृजनशीलता मनुष्य की सहजवृत्ति है लेकिन सभी मनुष्यों में वह एक सी नहीं पायी जाती। हमारी चेतना में जिस प्रकार के जिस अनुभव क्षेत्र से संबंधित विचार होंगे, उसी क्षेत्र में हम सृजन का निर्माण कर सकेंगे। मनुष्य की चेतना ही हमें चेतनशील होने का आभास दिलाती है। मनुष्य इसी चेतना से परिचालित होता रहता है। मनुष्य को बाह्य जगत से जोड़ने का कार्य यह चेतना ही करती है।

''युग–चेतना'' युग के शुभारंभ, सत्यासत्य तथा तद्युगीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक प्रवृत्तियों को पहचानने की शक्ति है जो शीघ्र ही बता देती है कि

---

[1] लक्ष्मीकांत वर्मा, नई कविता के प्रतिमान, पृ0सं0– 224
[2] डॉ0 रामगोपाल शर्मा, साहित्य के नये संदर्भ, पृ0सं0– 9

वांछनीय एवं उचित क्या है और क्या नहीं। आम आदमी परिस्थिति से केवल प्रभावित होता है वह उस प्रभाव को ग्रहण नहीं कर पाता। जबकि कलाकार युगीन परिस्थियों से अभिभूत होकर अपनी कलात्मक चेतना के माध्यम से युग–विशेष को अपने साहित्य में मूर्त रूप प्रदान करता है। इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा दार्शनिक स्वरूप जिस युग में जैसा रहा हो उसे ठीक उसी रूप में ग्रहण कर अपनी कृति में जीवन्त अभिव्यक्ति देना ही युग–चेतना कहलाती है। यदि कोई उपन्यासकार ऐसा करता है तो वह उसके उपन्यास की युग–चेतना कही जाएगी और यदि कवि है तो उसका काव्य युग–चेतना का काव्य कहा जाएगा। उपन्यासकार को तो युग–चेतना तथा लोक रूचि के अनुसार अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक संनद्ध एवं समान रहना पड़ता है।

''युग चेतना'' का चित्रण नरेन्द्र कोहली के उपन्यास ''दीक्षा'' की महत्वपूर्ण पहचान है।गोर्की कलाकारों का निरंतर आग्रह करता था कि जीवन और जनता का अध्ययन करो।

डॉ. ओम प्रकाश गुप्ता के शब्दों में कहा जाए तो– ''यदि किसी देश के विकास का सही ज्ञान प्राप्त करना हो तो उस देश का उपन्यास साहित्य पढ़ना चाहिए।''[1]

उपर्युक्त बातों को समझने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ''युग चेतना'' शब्द का प्रयोग बौद्धिक विश्लेषण की अपेक्षा अनुभूति एवं संवेदनशीलता के अधिक निकट मालूम होता है। अतः यह भी सत्य है कि ''युग चेतना'' शब्द का प्रयोग इतने व्यापक परिप्रेक्ष्य में बाँधना बहुत कठिन है। अतः कहा जा सकता है कि ''युग–चेतना'' अपने युग के समग्र परिवेश एवं प्रवृत्तियों को जानने– पहचानने की वह दृष्टि है जो यह बतलाती है कि उचित क्या है, अनुचित क्या है?

---

[1]भगवती प्रसाद बाजपेयी, डॉ0 ओम प्रकाष गुप्ता, समस्या मूलक उपन्यासकार, पृ.सं. 13

एक प्रकार से ''युग–चेतना'' ही साहित्य की धड़कन है, साहित्य की शक्ति है।

कोई भी साहित्यिक कृति जिस देश, कालखण्ड और समाज में जन्म लेती है, उस देश काल या समाज का प्रभाव उस पर पड़ना स्वाभाविक है। उस काल की तत्कालीन, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विचार धाराओं के बीच ही साहित्यकार की चेतना का विकास होता है। साहित्यकार के निजी दृष्टिकोण को उस युग की परिस्थितियों और बदलती हुई सामाजिक चेतना बहुत दूर तक प्रभावित करती है। अतीत साहित्यकार को अनुभव प्रदान करता है, भविष्य उसमें आशा का संचार करता है, परन्तु युग साहित्यकार का निर्माण करता है। उपन्यासकार ''युग चेतना'' से सविशेष प्रभावित होता है। युग–जीवन और उसके परिवेश को अभिव्यक्त करने वाली सबसे सशक्त विधा उपन्यास है। युगीन यथार्थ की अभिव्यक्ति उपन्यास में सर्वाधिक कलात्मकता से की जा सकती है। नवल किशोर ने ठीक ही लिखा है कि–''उपन्यास आधुनिक युग की जटिल वास्तविकता के चित्रण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है।''[1]

'दीक्षा' में सामाजिक चेतना

साहित्य मानव संस्कृति का एक अविभाज्य अंग है। वह सामाजिक चेतना का भी एक अत्यंत अनिवार्य तत्व है।

यह कहना अतियुक्तिपूर्ण न होगा कि साहित्य और समाज और समाज का परस्पर संबंध है। किसी देशकाल की संस्कृति की झलक तत्कालीन प्रणीत साहित्य में स्पष्ट देखी जा सकती है। साहित्य को समाज का दर्पण या प्रतिबिम्ब कहा गया है। समाज के उत्थान–पतन में साहित्य का अत्यधिक योगदान रहता है। समाज और देश में चेतना की चिंगारी फूँक कर क्रांति की अग्नि प्रज्वलित करने का कार्य उस देशकाल के साहित्य एवं साहित्यकारों ने ही किया है।

---

[1] डॉ0 इंद्र नाथ मदान, हिन्दी उपन्यास पहचान और परख, पृ0सं0– 50

फ्रांसीसी एवं रूसी क्रांति इसके उदाहरण है। हिन्दी के उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने साहित्य की प्रवृत्ति को सामाजिक कहा है। उनके अनुसार– ''साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक परिमित नहीं रही, बल्कि वह मनौवैज्ञानिक और सामाजिक होती है। अब वह व्यक्ति और समाज को अलग नहीं देखती, किंतु उसे समाज के अंश के रूप में देखती है। इसलिए नहीं कि वह समाज पर हुकूमत करे, उसे अपने स्वार्थ–साधन का औजार बनाये, मानो उसमे और समाज में सनातन शत्रुत्व है, बल्कि इसलिए कि समाज के अस्तित्व के साथ उसका अस्तित्व कायम रहे और समाज से अलग होकर उसका मूल्य शून्य के बराबर हो जाता है।''[1]

समाजिक चेतना के बारे में बसन्ती पंत ने लिखा है कि– ''आधुनिक साहित्य की विभिन्न विधाओं में सामाजिक चेतना और युग–बोध की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति उपन्यास के माध्यम से हुई है। प्राचीनकाल में व्यक्ति जीवन की निष्ठाओं, सामाजिक जीवन के उदात्त संकल्पों, राष्ट्रीय जीवन के विकासशील चेतनस्तरों और विश्वजनित सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना का कार्य महाकाव्यों के माध्यम से होता था किन्तु आज ये सभी कार्य उपन्यास की रचना द्वारा सम्पन्न होते है। इसलिए उपन्यास को गद्य–युग का महाकाव्य कहा गया है।''[2]

डॉ. गणेशन ने भी कहा है––''जैसे महाकाव्य जीवन के सभी अंगों का स्पर्श करता है, उसी प्रकार या उससे भी बढ़कर उपन्यास जीवन का सर्वांगीण निरीक्षण कर सकता है।''[3]

समाज का सम्बन्ध भी किसी देश या काल विशेष में प्रवर्तमान विभिन्न परिस्थितियों – प्रवृत्तियों से जितना गहरा हो, समाज उतना ही प्रगतिशील एवं चेतना सम्पन्न होगा। सामाजिक

---

[1] सम्पादक– पदुमलाल बख्शी और हेमचंद्र मोदी एसाहित्य षिक्षा, पृ0सं0– 14
[2] बसन्ती पंत, हिन्दी उपन्यास : रचना विधान युग बोध, पृ0सं0– 94
[3] डॉ0 गणेषन, हिन्दी उपन्यास का अध्ययन, पृ0सं0– 30

चेतना के लिए प्रेरणारूप उन समस्त परिस्थितियों एवं समाज से उनके सम्बन्ध पर विचार करना होगा।

सुगठित मनुष्य–समूह को मानव–समाज कहा जा सकता है। प्रत्येक मानव–समाज अपनी एकता और व्यवस्था बनाये रखने के लिए कतिपय नियमों एवं रीतियों की सृष्टि करता है। इन नियमों तथा रीतियों के पालन का आग्रह रखा जाता है। लेकिन समय के बदलने के साथ इनमें परिवर्तन अवश्य हो जाता है। समाज में प्रचलित परम्परा, रीति–रिवाज एवं प्रथाएँ जब गतिमान समय के वेग से पिछड़ जाती है तो सर्व–साधारण का जीवन व्यग्र हो जाता है। महत्वाकांक्षी, प्रगतिगामी व्यक्ति की होड़ समय की द्रुत गति से होती है, किन्तु सम्पूर्ण समाज उतना गतिमय नहीं हो पाता।

परिणामतः सामाजिक शिकंजे एवं प्रतिमान शिथिल पड़ जाते है, मनुष्य उससे कहीं आगे बढ़ चुका होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति एवं समाज, सामयिकता एवं परम्परा का अन्तराल एक अव्यवस्था को जन्म देता है। इस अव्यवस्था का प्रभाव व्यक्ति के आचरण, पारिवारिक जीवन तथा सामाजिक परिवार सभी पर पड़ता है। मृतप्रायः परम्पराएँ जब नूतन अन्वेषणों के मार्ग में रोड़ा अटकाती हैं तो सुधी साहित्यकार इन कुरीतियों, सड़ी–गली परम्पराओं का चित्रण कर उनके खण्डन के लिए जनमानस को प्रेरित करता है।

सदियों से गुलामी की जंजीरों में जकड़े भारत को स्वतंत्र करने हेतु जन आन्दोलन शुरू हो जाता है। दूसरे विश्वयुद्ध में उखड़ चुके अंग्रेज जाते–जाते ऐसी कूटनीति अख्तियार करते है, जिससे भारत का विभाजन हो जाता है और हमारी स्वतंत्रता रक्तरंजित हो जाती है। स्वतंत्रता–पूर्व भारतीय समाज ने जो स्वप्न संजोये थे,टूटकर चूर हो जाते हैं। भारतीयों में अराजकता, अव्यवस्था, छल, पाखण्ड, अनैतिकता, अन्याय, शोषण, अत्याचार आदि अनेकानेक असंगतियाँ पैदा होती है। सचेत और प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार श्री नरेन्द्र कोहली के मानस पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। उन्होनें पौराणिक

कथ्यों के आधार पर युगीन समाज की अनेकानेक विद्रूपताओं को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। उन्होने रामकथा, के संदर्भों को अपने मिथकों का आधार बनाकर स्वातंत्रयोत्तर भारतीय समाज को उसकी सभी सुरूपताओं और कुरूपताओं के साथ अपने उपन्यास ''दीक्षा'' में चित्रित करने का प्रयास किया है।

नारी की स्थिति :

भारतीय समाज में नारी को देवी, उर्द्धांगिनी, भार्या, सहधर्मिनी, गृहलक्ष्मी, रानी, पटरानी आदि नाना विशेषताओं से सज्जित किया है। भारतीय समाज में पत्नी का बड़ा ही आदर्श चित्र खींचा गया है और उसे उच्च आसन पर बैठाया गया है। वेदों और पुराणों में विवाह को एक संस्कार माना गया है। विवाह के समय वर वधु से कहता है–''मैं तुम्हारा हाथ सौभाग्य के लिए ग्रहण करता हूँ। तुम अपने पति के साथ वृद्धावस्था की ओर अग्रसर हो। सृष्टिकर्ता ने, न्याय ने, बुद्धिमानों ने तुमको मुझे दिया है।''

पत्नी पति के गृह की साम्राज्ञी होती है। वेदों, पुराणों और शास्त्रों में भारतीय नारी और पत्नी का भव्य चित्र खींचा गया है, किन्तु वास्तविकता यह है कि आज आर्य समाज में अधिकांश रूप में पत्नी का दासी और पति का स्वामी रूप ही दिखलायी देता है। गृह साम्राज्ञी या गृहलक्ष्मी का रूप बहुत कम है। पति आज भी परमेश्वर है, पत्नी को उसकी पूजा करनी चाहिए और आँख मूँदकर उसकी हर आज्ञा का पालन करना चाहिए।

हिंदी ही नहीं संसार के अनेक उपन्यासों में भी स्त्री की समस्या एक ध्यानाकर्षक विषय रही है। आधुनिक युग में समाज सुधारकों का ही नहीं साहित्यकारों का ध्यान भी नारी से सम्बद्ध विभिन्न समस्याओं की ओर विशिष्ट रूप से आकृष्ट हुआ। युग–युग से पीड़ित व प्रताड़ित नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण उपन्यासकारों ने बड़ी संवेदनशीलता के साथ किया है। नरेन्द्र कोहली

एक सजग और संवेदनशील रचनाकार है। उन्होने अपने पौराणिक उपन्यासों में प्राचीन समय में स्त्री की जो स्थिति थी उसका सजीव, प्रमाणिक एवं कलात्मक चित्रण किया है। तद्‌युगीन नारी के जीवन के विभिन्न पहलुओं को उन्होने सफलता पूर्वक उजागर किया है।

नारी की दुर्दषा

पौराणिक काल में नारी की स्थिति बड़ी दयनीय थी। पुरूष समाज के निम्नकुल में तो स्त्री निःसहाय थी ही, कुलों में भी वह पराधीनता से पीड़ित थी। वह पति और अपने कुल के लिए अपने व्यक्तित्व को भी बलि चढ़ा देती थी। कौशल्या के जीवन में भी ऐसा ही हुआ था –''और श्वसुर की आज्ञाओं तथा इच्छाओं का अक्षरशः पालन करने का प्रयत्न किया था कौशल्या ने। वह जानती थी कि मानव वंश में नारी पूर्णतः पति के अधीन है। उसका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है। यह वंश समाज मे पितृ–सत्ता को उसकी पराकाष्ठा तक ले गया था। कौशल्या ने अपने मायके में भी यही देखा था और ससुराल में भी वही देख रही थी। वह व्यक्ति नहीं थी, वह उस वंश की पुत्रवधू थी और उन्हे वहीं रहना था। परिवार के लिए उन्हे अपने परिवार का बलिदान करना था। और कौशल्या ने वही किया।'' [1] अंधविश्वास एवं रूढ़िवाद में उलझे हुए भारतीय समाज की नारी घर की चारदीवारी के बीच बंद कर दी गई थी। पति के कार्यों मे हस्तक्षेप करना उनके लिए वर्जित था। मृत्युपर्यंत नारी को पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े रखना मानों पुरुष प्रधान समाज का मुख्य कार्य था।

''पिता रक्षति कौमरे, भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रश्व स्थाविरे भावि न स्त्री स्वातंत्र्य मर्हति।''[2]

स्त्री का अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं था, वह संपूर्ण रूप से पुरुष पर निर्भर थी। समाज की झूठी रूढ़ियों के कारण भी कई

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, दीक्षा, पृ0सं0– 24
[2] हितोपदेष 1864, पृ0सं0– 58

निर्दोष स्त्रियों के अत्याचार का शिकार बनने के पश्चात् अपने समाज के ससम्मान जीने का साहस नहीं कर पाती है। इस संदर्भ में राक्षसों द्वारा पीड़ित नारियों के संदर्भ में विश्वामित्र राम से कहते है कि ––''हाँ राम। हमारा समाज इन संदर्भों में अभी इतना उदार नहीं है कि उन युवतियों को अपेक्षित सम्मान दे सके। मर्यादा की रूढ़ परिकल्पना में बँधा हुआ यह जन मानस यदि उन्हे पतित मानकर उनका अपमान कर बैठा तो ? और उनमें से अनेक युवतियों में मुझे गर्भ के लक्षण भी दिखाई पड़े है। उनकी संतान के विषय में भी आशंकित हूँ पुत्र।''[1]

राक्षसों के अत्याचार का शिकार बनी और राम ने जिसे मुक्ति दिलाई ऐसा वनजा राम से कहती है –''आर्य! मेरे पति को मारकर राक्षस खा चुके है। मैं अपहृत की गई अबला हूँ, जो समाज की दृष्टि में पतित हो चुकी है। इस समय में किसी राक्षस का गर्भ वहन कर रही हूँ। ऐसी अवस्था में आप मुझे किसके भरोसे छोड़कर जा रहे है, प्रभु ? यदि इस प्रकार निर्मम संसार में प्रताड़ना सहने और अपमानित होने के लिए निराश्रित ही छोड़ना था तो हमें आपने मुक्त ही क्यों कराया?[2]

शारीरिक दृष्टि से बलहीन नारी पुरुष द्वारा बलात्कार का भोग बनती है। किन्तु समाज उसे ही दोषी ठहराता है। गौतम की अनुपस्थिति में इंद्र अहल्या का बलात्कार करता है। जब वह कुटिया से बाहर निकलता है तो उसके वस्त्र अस्त–व्यस्त है। मुख और भुजाओं पर खरोंचे लगी है, उसके शरीर पर रक्त के छोटे–छोटे बिन्दु जमे हैं जैसे किसी से हिंस्र मल्ल–युद्ध करके आया हो। उसके हाव–भाव से ही पता चल जाता है कि अहल्या के साथ जबरदस्ती करके आया है। किन्तु भीड़ के सामने वह अहल्या को दोषी ठहराते

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, दीक्षा, पृ0सं0–83

[2] वही, पृ0सं0– 85

हुए कहता है कि –''पहले स्वयं बुला लिया और अब नाटक कर रही है।''[1]

कुटिया के आगे जमी भीड़ इंद्र को जगह दे देती है और इंद्र वहाँ से चला जाता है। कोई भी उसे दंडित नहीं कर पाता। आश्रम व्यवस्था के अनुसार अहल्या को ही दण्ड भुगतना पड़ता है। उसे अपने पुत्र और पति से कई वर्षों तक अलग रहना पड़ता है।

विवाह जैसे महत्वपूर्ण प्रसंगों में भी नारी की इच्छा जानने का प्रयत्न नहीं किया जाता था। विवाह संबंधी निर्णय पिता पर अवलंबित थे। एक बार वीर्य शुल्का नारी घोषित होने के बाद उसकी पसंद नापसंद पर कोई विचार नहीं करता था। जब विश्वामित्र राम से सीता के विवाह के बारे में राम की इच्छा को सर्वोपरि बताते है, तब राम विश्वामित्र से प्रश्न करते हैं कि आपका सम्पूर्ण बल इस विषय में मेरी इच्छा जानने पर है, पर सीता की भी अपनी कोई इच्छा होगी। तब विश्वामित्र राम से कहते है कि–''तुम्हारा विचार बहुत उत्तम है, वत्स। किंतु जनक कुमारी की इच्छा जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। ऐसी स्थिति में अपनी पुत्री की इच्छा जानने का दायित्व सम्राट सीरध्वज पर है। वैसे वीर्य शुल्का घोषित होने के पश्चात् कन्या की इच्छा के विषय में क्या कहा जा सकता है।''[2]

यहाँ नरेन्द्र कोहली ने पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों की असहाय स्थिति का अंकन किया है।

नारी का शारीरिक शोषण और अत्याचार

प्रजा की रक्षा का दायित्व जिसके हाथ में सौंपा गया हो वही जिम्मेदार व्यक्ति जब अपने पथ से भ्रष्ट हो जाता है तो किसी की सुरक्षा कैसे रह सकती है ? पौराणिक युग में राजा दशरथ ने सिद्धाश्रम के आस–पास के क्षेत्र की सुरक्षा की जिम्मेदारी बहुलाश्व को

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –112

[2] वही, पृ0सं0– 161

सौंपी थी। किन्तु राक्षसों ने उसे एक सुन्दर दासी भेंट में देने का वचन देकर पटा लिया था। सेना नायक खुद सुन्दरियों के चक्कर में पड़ जाता है तो उनके परिवार वाले और सहयोगी भी उसी दिशा में आगे बढ़ते है। यहाँ तक कि उसका पुत्र भी इसी पथ पर चलता है। ऐसी स्थिति में सबसे ज्यादा किसी को सहना पड़ता है तो वह निम्न जाति को आर्य अपने आप को उच्च कुलीन मानते हुए निम्न कुल की नारियों को निम्नवंशी मानते है, और सोचते है कि नीच जाति की स्त्रियों की भी कोई मर्यादा होती है क्या? वे होती ही इसलिए हैं? उनके भोग के लिए ही तो। उस समय आर्य युवक निम्नकुल की स्त्रियों से बलात्कार करते थे और उनको शारीरिक यातनाएँ भी देते थे। अजानुबाहु विश्वामित्र को एक ग्राम की दयनीय घटना का वर्णन करते हुए कहते है कि –''अकेला अस्वस्थ गहन क्या करता। उन्होंने उसे पकड़ कर एक खम्भे के साथ बाँध दिया। उसकी वृद्धा पत्नी, युवा पुत्रवधुओं तथा बालादुहिता को पकड़कर, गहन के सामने ही नग्न कर दिया। उन्होने वृद्ध गहन की आँखों के सम्मुख बारी–बारी उन स्त्रियों का शीलभंग किया। फिर उन्होने जीवित गहन को आग लगा दी, और जीवित जलते हुए गहन की उस चिता में लौह शलाकाएँ गर्म कर–करके उन स्त्रियों के गुप्तांगो पर उनकी जाति चिह्नित की ....।''[1]

सम्पन्न लोग निम्नकुल की स्त्रियों की इज्जत लूटते थे और उनको यातनाएँ देते थे। जबकि निम्नकुल के लोग निःसहाय होकर ऐसे कृत्यों को सहते थे क्योंकि उनके पास और कोई चारा नहीं था।

किसी भी स्थान पर नारी की सुरक्षा नहीं थी। देवराज इंद्र गौतम के आश्रम में आते है तो उनकी नजर अहल्या पर टिकती है। रात्रि के अंतिम प्रहर में गौतम की अनुपस्थिति में इंद्र अहल्या पर बलात्कार करता है'' अहल्या चीखती रही, चिल्लाती रही, हाथ पैर पटकती रही, अपने दाँतों तथा नखों से इंद्र के साथ लड़ती गई ....

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –10

किंतु इंद्र उस पर हावी होता चला गया। इंद्र ने उसके केशों को अपने बाएँ हाथ की मुट्ठी में इस प्रकार जकड़ रखा था कि वह अपना सिर तनिक भी नहीं हिला सकती थी। उसकी जंघा को अपने बलिष्ठ घुटने के नीचे दबाकर इंद्र ने उसके शरीर को कीलित कर दिया था . ....अहल्या पूरी तरह अस्मर्थ हो चुकी थी....''[1]

इस प्रकार देवराज जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी हर किसी सुंदर स्त्री को अपनी कामवासना का शिकार बनाते थे। आश्रम जैसे पवित्र स्थानों में भी स्त्री की सलामती नहीं थी। इंद्र ने आश्रम में ही अहल्या का बलात्कार किया था।

इस प्रकार पुरुष समाज द्वारा नारी का शोषण और अत्याचार एक आम बात थी।

स्त्री उपहार की वस्तु के रूप में

पौराणिक काल में नारी को सहज एक उपहार की वस्तु समझा जाता था। उच्च आसन पर आरूढ़ व्यक्ति को खुश करने के लिए उपहार स्वरूप सुन्दरी दी जाती थी। ऐसे उपहार पाकर सत्ताधारी व्यक्ति से अच्छे–बुरे काम करवाये जाते थे। बहुलाश्व जैसे व्यक्तियों को राक्षस सुंदरी देकर अपना काम निकलवा लेते थे और ऐसे व्यक्ति राक्षसों के कृत्यों को अनदेखा कर उनके गलत कामों में सहभागी बन जाते थे। सिद्धाश्रम के आस–पास ऐसी ही वृत्तियाँ चलती थी। राक्षसों ने बहुलाश्व को अपने वंश में करके रखा था। इस संदर्भ में अजानुबाहु विश्वामित्र से कहते है––''सेनानायक बहुलाश्व को आज बहुत से उपहार प्राप्त हुए है, आर्य कुलपति! उसे एक बहुमूल्य रथ मिला है। उसकी पत्नी को शुद्ध स्वर्ण के आभूषण मिले है। मदिरा का एक दीर्घाकार भांड मिला है और कहते हैं कि एक अत्यंत सुंदरी दासी भी दिए जाने का वचन है।''[2]

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0– 110
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, 'दीक्षा', पृ0सं0 –7

राक्षसों द्वारा सुन्दरी दासी मिलने के आश्वासन मात्र से ही बहुलाश्व अपने सैनिकों को विश्वामित्र की सहायता से हटा देता है। स्त्री की इच्छा– अनिच्छा का कोई महत्व न था। पुरुष समाज स्त्री को अपनी कामवासना का खिलौना मात्र समझता था। जिन व्यक्तियों के पास सत्ता थी और लोग धनिक थे, वे स्त्रियों की सुंदरता का लाभ उठाते थे। राजा दशरथ के समय में भी राम ने अपने शैशवकाल में देखा था कि सम्राट की कई सुन्दर युवती पत्नियाँ थी। जिनके साथ सम्राट ने कभी आकर्षित होकर अपनी इच्छा से, कभी किसी के प्रस्ताव पर अथवा किसी की भेंट स्वीकार करने के लिए विवाह किए थे। जिनमें एक स्त्री के साथ विवाह कर, उसे दो–तीन दिन अपने महल में रख, राजसी अंतःपुर में धकेल दिया जाता था। अतःपुर में जाकर न वे किसी की पुत्रियाँ थीं, न बहनें, न पत्नियाँ–वे अंतःपुर की स्त्रियाँ होती थी। उनके भरण–पोषण का भार राजकोश पर होता था और किसी का उनके प्रति कोई दायित्व न था। उन स्त्रियों की स्थिति अत्यंत विचित्र थी – न वे बंदिनी थीं, न स्वतंत्र वे सौभाग्यवती विवाहिताएँ थीं, किन्तु पति विहिना। वे रानियाँ थी, किन्तु राजपरिवार की सदस्या के रूप में उनमें से किसी को कोई अधिकार प्राप्त नहीं था।

सामाजिक मूल्यों की स्थिति

मनुष्य समाज में रहता है। उसका जीवन व्यवस्थित और सुचारू रूप से व्यतीत हो इसलिए कुछ नियम बनाये जाते हैं जो सामाजिक मूल्यों के रूप में स्वीकार किए जा सकते है। समय के परिवर्तन के साथ इन सामाजिक मूल्यों में भी परिवर्तन आवश्यक होता है। जब कोई युगीन परिवेश, वातावरण और परिस्थितियों के अनुकूल इनमें परिवर्तन नहीं करता है तब वे सारे नियम जड़ और त्रासदायी बन जाते है। अतः मनुष्य की सुख और सुविधा को ध्यान में रख कर इन सामाजिक मूल्यों में यथोचित बदलाव अपेक्षित है। राम युगीन

समय में सामान्य प्रजा पर राक्षस आदि द्वारा बहुत अत्याचार किए जाते थे। किन्तु जब उन्हे कोई समर्थ प्रतिद्वन्द्वी मिल जाता था,तो उनमें युद्ध का साहस नहीं रह जाता था। ताड़का वध के बाद आश्रम वासियों और सामान्य ग्राम्य– जनों के भीतर राम एक नया उत्साह जगाते है। आश्रम का बच्चा–बच्चा राक्षसों का काल बनने का स्वप्न देख रहा है। अल्प समय में इस परिवर्तन के कारण घायल सुकंठ आर्य कुलपति से इस बारे में पूछता है तब आर्य कुलपति राम की ओर स्नेह भरी दृष्टि से देखते हुए कहते हैं–''सामान्य प्रजाजन के साथ यही होता है।उनके सम्मुख बलिदान का उदाहरण रखो, तो उनमें बलिदान की भावना जागती है, स्वार्थ का रखो तो स्वार्थ की। राम ने उनके सम्मुख न्याय, निर्भीकता तथा वीरता का आदर्श रखा है– प्रजाजन में दीर्घकाल से दमित ये शक्तियाँ जाग उठी हैं। इन शक्तियों को जगा पाने की क्षमता वाला व्यक्ति अत्याचारियों के लिए सदा एक चुनौती बन जाता है।''[1]

नरेन्द्र कोहली के 'दीक्षा' उपन्यास में राम एक प्रजा के आदर्श के रूप में प्रस्तुत हुए है। गौतम के आश्रम में जब देवराज इंद्र आये थे तो गौतम की कुटिया के एक दम साथ वाली कुटिया में आश्रम के नियमों के सर्वथा विरूद्ध उस कुटीर में मदिरा का प्रबन्ध किया गया था। विश्वामित्र की यह बात सुनकर राम को आश्चर्य होता है कि देवराज इंद्र मदिरा पान करते हैं। इस संदर्भ में विश्वामित्र राम से कहते है कि आर्य संस्कृति के मूल स्त्रोत, देव जातियों ने अपने वैभव से विक्षिप्त होकर, भोग की ओर मदांध पग पढ़ाए है। उनके क्षय का मुख्य कारण उनका यही विलास है। विलास के कारण ही अनेक बार उन्हे युद्ध में पराजित होना पड़ा है। वैभव अपने आप में विष भी होता है। यदि व्यक्ति में चरित्र की दृढ़ता, आत्मबल और जनकल्याणोन्मुखी दृष्टि न हो तो वह जाति के वैभव को निजी वैभव मानकर संपूर्ण प्रजा में समान वितरण न कर, स्वयं उसका भोग आरंभ

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –58

कर देता है। इन सामाजिक कलंकों का विद्रोह करते हुए लक्ष्मण कहते है –''लोग चरित्रहीनों का सम्मान क्यों करते हैं ? धन, सत्ता, पद अथवा ज्ञान की औषध से चरित्रहीनता का विषय तो नहीं कटता, गुरूदेव! मेरी माँ कहती है कि चरित्रहीन का कदापि सम्मान मत करों, चाहे वह स्वयं तुम्हारा पिता ही क्यों न हो।''[1]

पौराणिक काल में ऋषि, पद, सत्ता, शक्ति अथवा समृद्धि से अभिभूत होकर ऐसे चरित्रहीन का न केवल स्वागत् करते थे, वरन् उसे विशेष सुविधाएँ भी देते थे। ऐसे ऋषि समाज में चरित्रहीनता को प्रोत्साहित करते थे। लक्ष्मण ऋषियों के ऐसे कर्मों के साथ सहमत नहीं होते हैं और कहते हैं कि ऐसे व्यक्तियों को दण्ड मिलना ही चाहिए। किन्तु परम्परा से चली आती अनेक मर्यादाओं को सामान्य लोग मन से कहीं असहमत होते हुए भी ढोते चले जाते हैं। जब कोई क्रान्तिकारी मौलिक व्यक्तित्व उन मर्यादाओं पर प्रहार करता है, तभी वे मर्यादाएँ टूटती हैं और जन सामान्य उनका उलंघन कर पाता है। गौतम ज्ञानी थे, तपस्वी थे, सच्चरित्र थे किन्तु उनके व्यक्तित्व में मौलिक क्रांति का तत्व नहीं था। गौतम के आश्रम में ही इंद्र अहल्या से बलात्कार करता है। जिसमें अहल्या का कोई दोष नहीं है, किन्तु उस समय ही समाज व्यवस्था और सतीत्व के संदर्भ में झूठी मान्यताओं के कारण इस आश्रम को भ्रष्ट माना जाता है और उस समय के मूल्यों और मान्यताओं के कारण ऐसे स्थानों पर अध्ययन अध्यापन, ज्ञानार्जन–तपस्या, कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिए जनकपुर में नया आश्रम स्थापित किया जाता है और उसके आश्रम के कुलपति के रूप में गौतम को ही प्रतिष्ठित करने का सम्राट सीरध्–वज निर्णय करते है। किन्तु इसके बदले में गौतम को अपनी पत्नी को अपने पुराने आश्रम में ही छोड़ना पड़ता है। अहल्या प्रसंग के माध्यम से नरेन्द्र कोहली ने सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं के संदर्भ में 'दीक्षा' में कहा है कि–''देवी अहल्या आज भी उसी आश्रम में एकांकी

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –90

तपस्या कर रही है,और प्रतीक्षा कर रही है कि समाज उन्हे पवित्र मानकर गौतम के पास जाने की अनुमति दे। गौतम प्रतीक्षा कर रहे हैं कि सामाजिक अनुमति पाकर, देवी अहल्या उनके पास आयें, और बालक शत अब सीरध्वज का राजपुरोहित शतानन्द बनकर अपनी माँ के लिए सामाजिक अनुमति तथा पिता से मिलन की प्रतिक्षा कर रहा है।''[1] विश्वामित्र की यह बात सुनकर राम मन ही मन निर्णय करके उस आश्रम में जाकर अहल्या के पैर छूते हैं और वर्षों से घर कर गई झूठी मान्यताओं को तोड़कर अहल्या को ससम्मान गौतम के पास पहुँचाते हैं।

न्याय–विधान

प्रत्येक युग और समाज के अपने नियत मूल्य होते है। जब कोई व्यक्ति इन नियमों का स्वार्थवश उलंघन करता है तब वह अपराध कहलाता है। ऐसे व्यक्ति को शासक द्वारा या समाज के मुखिया द्वारा दण्डित किया जाता है। दोषी को दोषी ठहराना और निर्दोष को निर्दोष घोषित करना तथा मनुष्य के बुनियादी और जन्मसिद्ध अधिकारों की रक्षा करना शासक की न्यायप्रियता कहलाएगी। पौराणिक काल में जब सम्राट थोड़ा बहुत शिथिल पड़ जाता या अपने शासन पर पूरा ध्यान न दे पाता वैसी परिस्थितियों में लूट–पाट, अत्याचार और बलात्कार जैसी प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती थीं। न्याय जैसा कोई विधान न रहने से जिन व्यक्तियों को प्रजा की रक्षा की जिम्मेदारी दी जाती है वे ही उन पर अत्याचार करने लगते थे। बहुलाश्व का पुत्र देवप्रिय गहन के परिवार की स्त्रियों से अपने मित्रों सहित बलात्कार करता है और अंत में गहन को जिन्दा जला देता है। बहुलाश्व के हाथ में सत्ता थी इसलिए गहन के परिवार वालों को न्याय नहीं मिलता है किन्तु जब राम द्वारा ताड़का का वध होता है तो, वहाँ की प्रजा का विश्वास लौटता है और गगन अपने भाई और

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –143

साथियों सहित देवप्रिय को बंदी बनाकर विश्वामित्र के सामने प्रस्तुत करता है। गगन अपने परिवार वालों के साथ घटी घटना के संदर्भ में ऋषि से न्याय माँगता है। तब विश्वामित्र कहते हैं कि यद्यपि आश्रम का कुलपति मैं हूँ, फिर भी शासन के प्रतिनिधि राम हैं। न्याय वे ही करेंगे। विश्वामित्र अपराधियों को राम के सामने प्रस्तुत करने को कहते हैं। गगन पाँच आर्य युवकों को राम के सम्मुख लाकर खड़ा कर देता है। देवप्रिय राम से कहता है कि ये नीच निषाद मुझे पकड़कर बाँध लाये हैं। तब राम देवप्रिय से कहते हैं कि देवप्रिय, तुम्हे केवल न्याय मिलेगा। आज यहाँ सिवाय न्याय के और कुछ नहीं होगा। और देवप्रिय के अपराध को ध्यान में रखकर वे कहते हैं कि–''राक्षसों का न्याय चाहे न हो, किन्तु इसका न्याय जरूर होगा। ये लोग आर्य सेनानायकों के पुत्र ही क्यों न हों ''आर्य'' किसी जाति, वर्ण, आकार अथवा पक्ष का नाम नहीं है। वह मानवीय सिद्धान्त, आदर्श और चरित्र का नाम है। जो अमानवीय कृत्य इन्होने निषाद स्त्री– पुरूषों के साथ किए हैं। उन पापों के प्रतिकार के लिए इन राक्षसों के लिए, मैं, न्यूनतम दंड प्रस्तावित करता हूँ मृत्युदंड।''[1]

राम जाति, सम्बन्धों, सम्भावतता तथा समृद्धि का विचार करते हुए न्याय नहीं करते। वे मानते हैं कि दुर्बलों को न्याय माँगने का अधिकार सबल से अधिक होता है। न्याय किसी की इच्छा से नहीं होता, न्याय सत्य और मानवप्रेम पर आधृत होता है। देवप्रिय के मृत्युदण्ड के समाचार मिलते ही बहुलाश्व अपने सैनिकों सहित राम के पास पहुँचता है और राम से कहता है कि इस क्षेत्र का सेनानायक मैं हूँ, मेरी इच्छा के विरूद्ध आप किसी का भी न्याय नहीं कर सकते। तब राम उसे कहते हैं कि–''केवल अपराधी को दंड देने से न्यायपूर्ण नहीं हो जाता है बहुलाश्व। अपराधी की रक्षा करनेवाले को भी उसके दुष्ट कृत्यों के लिए दंडित किया जाना पूर्णतः न्याय के अन्तर्गत है। तुमने पुत्र प्रेम में पड़कर, प्रजा पर अमानवीय अत्याचार करनेवाले

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0–69

राक्षसों की रक्षा की है, उनसे मित्रता की है, उनसे उत्कोच स्वीकार किया है। तुमने न केवल अपना कर्तव्य पूर्ण नहीं किया, तुमने अपने अधिकारों का दुरूपयोग भी किया है। इन अपराधों के लिए तुम्हे कोई कठिन दंड मिलना चाहिए, किन्तु मैं यथावश तुम्हे केवल मृत्युदण्ड दे रहा हूँ।''[1]

राम के युग में प्रजा के हित में न्याय को अधिक महत्व दिया जाता था। अपराधी को अपराध के दण्ड स्वरूप कड़ी से कड़ी सजा दी जाती थी। जिसका असर प्रजा पर होता था। उस समय ऋषि मुनियों, कुलपति और आचार्यों की बातों को शासक स्वीकारते थे और उनका अपने साम्राज्य में पालन भी करते थे। इंद्र अहल्या से बलात्कार करता है, जिसके दण्ड स्वरूप गौतम उसे शाप देते है। तब सभा में सब सोचते है कि यह ऋषि का शाप है, क्या यह मान्य होगा? तब सम्राट सीरध्वज अपने आसन से उठकर कहते है – ''मैं मिथिला–नरेश सीरध्वज घोषणा करता हूँ कि जब तक कुलपति गौतम अपने पद की मर्यादा का पालन करेंगे, उनके शाप की रक्षा का दायित्व मुझ पर होगा।''[2] यहाँ कोहली जी ने उस समय के राजाओं की ओर संकेत किया है। सम्राट सीरध्वज देवराज इंद्र के कृत्य को अनुचित समझते हैं और उसके दण्ड स्वरूप गौतम जो दण्ड घोषित करते है उसकी रक्षा की जिम्मेदारी स्वयं लेते है।

स्वार्थ वृत्ति

प्रायः प्रत्येक युग के मनुष्य में स्वार्थपरता और सत्ता–लोलुपता पाई गई है। पौराणिक काल में कुलपतियों को उच्च स्थान और आदर प्राप्त था। कुलपति की सहायता के लिए या उनकी अनुपस्थिति में आश्रम का कार्यभार सँभालने के लिए उपकुलपति भी नियुक्त किए जाते हैं। गौतम के आश्रम में उपकुलपति के पद पर आचार्य

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0–72
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0– 142

अमितलाभ आसीन थे। मनुष्य की सहज वृत्ति के कारण अपने पास जो कुछ होता है, उससे अधिक पाने की अपेक्षा करता है। अभितलाभ के मन में भी यह इच्छा उत्पन्न होती है और वह उपकुलपति से कुलपति बनना चाहता है। अपनी यह इच्छा वह इंद्र के सामने रखता है किन्तु इंद्र से उसे कुछ प्राप्त नहीं हो पाता है। तब वह मिथिला नरेश सीरध्वज के पास जाकर उनके समक्ष अपनी इच्छा प्रकट करता है। वह करूण स्वर में सम्राट से कहता है–''वैसे भी व्यवस्था संबंधी इतने दायित्व कुलपति ने मुझ पर छोड़ रखे हैं सम्राट कि सभी अधिवेशनों में उपस्थित होना मेरे लिए संभव नहीं है। आश्रमों में एकाधिकार की परम्परा अनेक लोगों के विकास में बाधक हो रही है सम्राट। यदि कुलपति के अतिरिक्त कुछ अन्य उच्च अधिकार दे दिए जाएँ तो व्यवस्था अधिक सुचारु हो जाएगी।''[1]

यहाँ अमितलाभ की स्वार्थवृत्ति स्वंय स्पष्ट हो जाती है। सीरध्वज उनकी स्वार्थवृत्ति स्वयं पहचान जाते हैं और कहते हैं कि स्वयं आश्रमवासियों द्वारा आश्रम में शासन के हस्तक्षेप को आमंत्रित करना शुभ नहीं होता, और तब तो एकदम नहीं जब आमत्रंण निजी स्वार्थ से युक्त हो। स्वार्थी लोग प्रत्येक देश और काल में विद्यमान होते है। जो ऊँचे आदर्शों तथा लक्ष्यों का आवरण ओढ़कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहते हैं उनके लिए आश्रमों में होने वाले सम्मेलन, ज्ञानोपार्जन का साधन न होकर, राजा मंत्रियों श्रेष्ठियों अथवा अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने का स्वर्णावसर होते है। अपने स्वार्थ की सिद्धी के लिए कभी–कभी वे लोग राजाओं के निजी दासों की तक चाटुकारिता करते देखे जा सकते हैं।

सामाजिक प्रतिष्ठा और दंभ

जीवन के प्रारम्भिक काल में मनुष्य अपनी इच्छा और रूचि के अनुसार कार्य करता था। उस वक्त जाति का कोई विभाजन नहीं

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0–97

हुआ था। फिर मनु ने कार्यों के आधार पर मनुष्य को चार जातियों में वर्गीकृत किया——ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और क्षूद्र। आगे चलकर यह वर्गीकरण इतना जड़ और चुस्त हो गया कि जन्म के आधार पर ही मनुष्य की जाति तय होने लगी। फिर कुछ स्वार्थी, लोलुप, भ्रष्ट और खोखले शासकों ने इसे भेदभाव पूर्ण बना दिया। ब्राह्मण और क्षत्रिय उच्चकुलीन कहलाने लगे तथा वैश्य और शुद्ध निम्न जाति के कहलाए। जब कभी बुद्धि विलासी हो जाती है तब सत्ता कोमल और भीरू हो जाती है, तो अन्याय को बल मिलता है। आर्य राजा प्रत्येक मानव को समान मानते थे– यह उनका आदर्श था। उनकी राजसभा में पंडित, विद्वान, ऋषि, मंत्री–परिषद तथा अन्य जन प्रतिनिधि होते थे, जिनकी बात राजा को माननी पड़ती थी। उस समय रावण जैसे राजा भी थे। जो अपने लिए सुख, विलास, सम्पन्नता एवं अधिकार चाहते थे। उसके लिए न्याय–अन्याय का द्वन्द्व नहीं था। उसका शासन एक–व्यक्ति सर्वशक्ति सम्पन्न अधिनायक का शासन था। वह न अपनी मंत्री–परिषद का परामर्श मानता था,न विद्वानों का। उसके राज्य में निर्धन प्रजा की कोई सुनवाई नहीं थी। वह सोने की लंका में बैठा शासन चला रहा था। उसके राज्य में कन्याओं का सम्मान तथा बुद्धिजीवियों के प्राण सुरक्षित नहीं थे। उसकी राजनीति अन्याय की राजनीति थी। वह अपने लाभ और अपने भाई बांधवों के तनिक से स्वार्थ के लिए अपनी संपूर्ण प्रजा का नाश करने में संकोच नहीं करता। उस समय रावण जैसे राजाओं को खुला क्षेत्र और बल मिलने का मुख्य कारण आर्य राजाओं का पाखण्ड था। वे एक दूसरे से मिल नहीं पाते थे और उसका मुख्य कारण ऐसे राजाओं को परामर्श देने वाले गुरू थे। उनकी क्षूद्रतावादी प्रणाली के कारण आर्यराजा कभी एक जुट होकर राक्षसों के अत्याचार का विरोध न कर सके। विश्वामित्र इस संदर्भ में राम से कहते है– ''आर्य सम्राट के पद पर वशिष्ठ बैठा है, जो मानव मात्र को समान नहीं मानता। वह अन्य जातियों से आर्यों को श्रेष्ठ मानता है और पुरूषों को नारियों से श्रेष्ठ

समझता है। वह शबरों, किरातों, निषादों वानरों, रक्षों, कोल–भीलों जैसी अनेक आर्येत्तर जातियों तथा दूर–दूर तक फैले हुए वशिष्ठ दर्शन को न मानने वाले आर्य ऋषि–मुनियों पर होने वाले अत्याचारों से पीड़ित नहीं होता। वह आर्य सम्राटों को आर्यावर्त्त से बाहर निकलने नहीं देता। फिर आर्य सम्राटों में मतभेद है। जनक और दशरथ साथ मिलकर कभी नहीं लड़ेंगे ....[1]

नरेन्द्र कोहली ने यहाँ उच्च पद पर आसीन ऋषि के जाति के अहंकार की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। उस समय जड़ता अधिक थी। सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण वनजा बिना अपने किसी दुष्कर्म के पीड़ित थी, अहल्या बिना अपराध के दंडित थी, सीता बिना दोष के अपमानित थी। उस समय यह रहस्य की बात नहीं थी कि सीरध्वज की पुत्री सीता भूमि पुत्री है। यह अज्ञात कुलशीला कन्या सीरध्वज को अपने राज्य के किसी खेत में हल चलाते हुए प्राप्त हुई थी। सीरध्वज राजा होते हुए भी ऋषि माने जाते थे। कोई अन्य नृप होता, तो उस बच्ची को कभी नहीं अपनाता किंतु सीरध्वज के मन में करूणा थी। मानव के लिए प्यार था इसीलिए वे उस कन्या को त्याग नहीं सके। उन्होने उसे पुत्रीवत् पाला। किन्तु तब सीरध्वज ने यह नहीं सोचा था। कि ज बवह कन्या युवती होगी, तो जाति–पाति, कुल गोत्र और ऊँच नीच की मान्यताओं में जकड़े इस समाज में उसके विवाह की समस्या कितनी जटिल होगी, और यह समस्या और भी जटिल हो जाएगी। जब सीता अद्भुत रूपवती युवती होगी। सीता चमत्कारिक रूपवर्ती युवती थी। जिसके सौन्दर्य तक की चर्चा आर्य सम्राटों के प्रासादों के भी बाहर, आर्यावर्त के बहुत परे राक्षसों, देवताओं, गंधर्वों, किन्नरों, नागों आदि के राजमहलों में भी हो रही थी। किन्तु आर्य सम्राटों और राजकुमारों में से कोई भी उपयुक्त पुरुष उस अज्ञातकुलशीला कन्या का पाणिग्रहण करने को प्रस्तुत नहीं था, और अपनी स्नेह–पालिता पुत्री सीता को जनक आर्येत्तर जातियों में देना नहीं चाहते थे। उनमें

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –38

पिता का हृदय और सम्राट का अहम् दोनों ही थे। इसलिए राजा जनक अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बचाने के लिए एक खेल रचते है। अजगव धनुष का संचालन। विश्वामित्र राम को लेकर जनकपुरी पहुँचते है। जब राम उनसे वहाँ आने का कारण पूछते है तो विश्वामित्र उनके समक्ष सारी घटना कह सुनाते है,''जनक ने उसी धनुष को लेकर सीता के विवाह की युक्ति सोची है। उसने यह प्रण किया है कि जो कोई उस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा देगा, अर्थात उस यंत्र को संचालित कर देगा सीता का विवाह उसी से होगा। पुत्र! जनक ने यह सोच रखा है कि कोई भी देवता,राक्षस, नाग, गंधर्व, किन्नर उस धनुष का संचालन नहीं कर सकेगा अतः सीरध्वज जनक यह कह सकेगा कि उसकी परीक्षा पर कोई पुरुष पूर्ण नहीं उतरा, अतः सीता अविवाहित रहेगी। तब वह आर्य राजकुलों में जमाता न पा सकने की अक्षमता के आरोप से बच जाएगा और सीता अज्ञात–कुलशीलता के कारण अविवाहित रह जाने के आक्षेप से मुक्त हो जाएगी।''[1]

उस समय भी स्वयंवर के नाम पर सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाये रखने के प्रयत्न किए जाते थे।

समाज सेवा

मनुष्य के स्वभाव में स्वार्थवृत्ति स्थायी भाव की तरह विद्यमान रहती है। वह अनुकूल अवसर आने पर किसी में ज्यादा या किसी में कम मात्रा में उद्दीप्त हो अभिव्यक्त होती है। फिर भी अपवाद रूप कुछ परोपकारी मनुष्य भी होते है जो दूसरे मनुष्यों के दुःख दर्द को समझने और यथा संभव दूर करने का प्रयत्न करते हैं। उनके इस कार्य को समाज सेवा कहा जा सकता है। पौराणिक युग में राक्षसों एवं शासकों से लोग पीड़ित थे। लोगों पर अत्याचार होते थे और उनके अधिकार छीन लिए गये थे किन्तु कोई उनके सामने आवाज

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –155

उठाने वाला नहीं था। राक्षस असमर्थ पुरुष को मार डालते थे और उनकी पत्नियों को उठा ले जाते थे। वे ऋषियों के धार्मिक अनुष्ठानों में भी विघ्न उपस्थित करते थे। समाज की व्यवस्था बनाये रखने के लिए जो शासक नियुक्त किए गये थे वे सर्वथा विफल थे। इन शासकों से निराश होकर ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ के पास पहुँचते है और वहाँ से राम और लक्ष्मण को अपने साथ ले आते है, वे राम–लक्ष्मण को शास्त्र–विद्या सिखाते है। राम–लक्ष्मण राक्षसों के आतंक का सामना करते हैं और अन्य राक्षसों के आतंक का सामना करते है। राम ताड़का का वध करते है। विश्वामित्र से अन्य राक्षसों को मारने के लिए राक्षस शिविरों में जाने की आज्ञा मानते है। ऋषि विश्वामित्र उनको आज्ञा दे देते है। जब राम वहाँ पहुँचते है तब राक्षस अपहृत युवतियों को वहाँ छोड़कर भाग जाते है। राम उन युवतियों को मुक्त कराते हैं और अपने साथ सिद्धाश्रम ले आते है। राम उन अपहृत युवतियों के रहने की उचित व्यवस्था करते है। राम इन अपहृत युवतियों का आत्मविश्वास लौटाते है और उनको अपने अतीत को भूलकर समाज में सम्मानपूर्वक जीने का पथ दिखाते है। राम और लक्ष्मण ऋषि के साथ जब जनकपुर की ओर बढ़ते है तब रास्ते में ऋषि उन्हे अहल्या की कथा सुनाते है। कथा के अंत में साथ ही वे दोनों राजकुमारों को अहल्या के आश्रम के सम्मुख रोकते है और कहते है कि आज भी यह कथा वहीं रूकी हुई है। राम कुटिया में प्रवेश करते है और अहल्या के चरण छूते है। पच्चीस वर्षों से अहल्या शिलावत् अपने पति व पुत्र का इंतजार कर रही थी। राम उनका उद्धार करते है तब वह कहती है –''तुमने मेरे चरण हुए हैं राम और लक्ष्मण! तुम्हारा कल्याण हो। इच्छा होती है कि मैं तुम्हारे चरण छू लूँ। ....मै अपनी कृतज्ञता किस रूप में अभिव्यक्त करूँ? तुम लोग नर–श्रेष्ठ हो। युग–पुरूष हो। कदाचित आज तक मैं तुम लोगों की ही प्रतीज्ञा कर रही थी। मैं ही नहीं आज संपूर्ण आर्यावर्त तुम्हारे जैसे युग–पुरूष की प्रतीज्ञा कर रहा है। मैं अकेले जड़ नहीं हो गई थी,

संपूर्ण आर्यावर्त जड़ हो चुका है। वे सब तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे है। वीर बंधुओं! तुम उनमें उसी प्रकार प्राण फूँको, जिस प्रकार तुमने मुझमें प्राण फूँके है। तुम सम्पूर्ण दलित वर्ग को सम्मान दो, प्रतिष्ठा दो, सामाजिक रूढ़ियों में बाँधा यह समाज न्याय–अन्याय, नैतिकता–अनैतिकता आदि के विचार और प्रश्नों के संदर्भ में पूर्णतः जड़ पत्थर हो चुका है। राम ! तुम इन सबको प्राण दो। ......मेरी प्रतीक्षा पूरी हुई। मेरी साधना आज सफल हुई। तुमने आज स्वयं आकर मेरा उद्धार किया है, आज मैं निर्भय ग्लानिशून्य मन से कहीं भी जा सकती हूँ। ....मेरा आत्मविश्वास लौट आया है। मैं निः संकोच अपने पति के पास जा सकती हूँ। मेरा मन किसी से आँखें नहीं चुराएगा। राम ! तुमने मेरे दुविधाग्रस्त मन को विश्वास दिलवा दिया है कि मैं अपराधिनी नहीं हूँ। वह अपराध–बोध मेरा भ्रम था।''[1] अहल्या के इन संवादों में देवत्व की ओर अग्रसर राम के मनुष्यत्व को समष्टि के उपयोग में लाने का निर्देश प्राप्त होता है।

राजनैतिक चेतना

राजनीति समाज का महत्वपूर्ण अंग है। किसी भी समाज के उत्थान–पतन में उसका विशेष योगदान होता है। समाज या राष्ट्र–विशेष की शासन व्यवस्था के नियमों एवं नीतियों के सम्मिलित रूप को राजनीति कहा जाता है; विभिन्न प्रकार के शासक तथा भिन्न–भिन्न समय एवं परिवेश के अनुसार राजनीति के अनेक रूप होते है। शासक एवं राज्य कर्मचारियों की स्वार्थ वृत्ति, सत्तालोलु–पता के कारण इसमें अनेक विकृतियाँ पाई जाती है। स्वतंत्रता–पूर्व भारत की प्रजा ने स्वराज्य को लेकर अनेक सुनहरे स्वप्न संजोये थे, किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उनके स्वप्न खण्ड–खण्ड होते दिखाई देते है। देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् राजनैतिक क्षेत्र में ऐसी धाँधली मची कि सच्चे देशभ– क्त पीछे रह गये और स्वार्थी व

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 149

सत्तालोलुप तत्वों ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। स्वार्थपरता, सत्तालोलुपता, भ्रष्टाचार एवं दल बदल की प्रवृत्ति जैसी बुराइयों ने भारतीय राजनीति को भ्रष्ट, ,खोखली व नीतिविहीन बना दिया। वैसे ये राजनीतिक बुराइयाँ, प्राचीन समय से लेकर आज तक की राजनीति में थोड़ी–बहुत मात्रा में दृष्टिगोचर होती आई हैं।

नरेन्द्र कोहली एक ऐसे प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं जिन्होने युगीन सत्य को मिथकों के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है।उन्होनें'दीक्षा' उपन्यास में अपने मिथकों का आधार बनाकर युग–विशेष की गतिविधियों को जीवन्त कर दिखाने का सफल प्रयत्न किया है। राजा दशरथ के समय के राजनैतिक तथ्यों को आज के संदर्भ से जोड़ने में उपन्यासकार कोहली कारगर सिद्ध हुए हैं। इन राजनैतिक गतिविधियों को विश्लेषित और व्याख्यायित करना अनुसंधात्री को आवश्यक प्रतीत होता है।

सत्तालोलुपता

दूसरों पर अधिकार प्राप्त करना और उसे बनाये रखना मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। मनुष्य ने जब से समूह सीखा है तब से उसकी सत्तालोलुपता बलवती होती चली गई। प्राचीन काल में भी, राक्षस देवता एवं सामान्य नागरिक आदि किसी न किसी प्रकार से अपने क्षेत्र में सत्ता स्थापित करना चाहते थे।

पौराणिक युग में आश्रमों के संचालन की सत्ता वहाँ के कुलपति को दी जाती थी और उनकी अनुपस्थिती या व्यस्तता में सहायता करने हेतु उपकुलपति नियुक्त किए जाते थे। उस समय वैसे लोग ऊँचे आदर्शों तथा लक्ष्यों का आवरण ओढ़कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहते थे। उनके लिए आश्रमों के सम्मेलन ज्ञानोपार्जन का साध्य न होकर, राजा, मंत्रियों श्रेष्ठियों अथवा अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करने का स्वर्णावसर होते थे। अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए कभी–कभी वे लोग राजाओं के निजी दासों तक की

चाटुकारिता करते देखे जाते थे। गौतम ऋषि के आश्रम में आचार्य अमिताभ उपकुलपति पद पर नियुक्त थे, किन्तु उनके मन में उपकुल पति से कुलपति पद पाने की इच्छा बलवती हो जाती है और वे सम्राट सीरध्वज के पास पहुँचते है–''सम्राट को अधिवेशन में न देखकर चिंता हुई अतः आपके दर्शन लाभ के लिए चला आया। वैसे भी व्यवस्था संबंधी इतने दायित्व कुलपति ने मुझ पर छोड़ रखे है, सम्राट के अधिवेशनों में उपस्थित होना मेरे लिए संभव नहीं है। आश्रमों मे कुलपति के एकाधिकार की परम्परा अनेक लोगों के एकाधिकारी में बाधक हो रही है सम्राट ! यदि कुलपति के अतिरिक्त अन्य उच्च अधिकारियों को भी विशिष्ट अधिकार दे दिए जाएँ तो व्यवस्था अधिक सुचारू हो जाएगी।''[1]

सत्ता व सम्पत्ति का दुरूपयोग

पौराणिक युग में मंत्रियों के साथ विचार– विमर्श करने के बाद राजा अपना कोई भी अंतिम निर्णय सुनाता था। किन्तु कहीं–कहीं बाली जैसे राजा भी थे जिन्हे उनकी मन भावन चीज का प्रलोभन देकर कोई भी अनैतिक कार्य करवाया जा सकता है। इसी प्रकार पौराणिक युग में राज्य के सुदूर प्रदेषों की व्यवस्था सेनानायकों के अधीन रहती थ। सिद्धाश्रम के आस–पास का विस्तार भी बहुलाश्व को सौंपा गया था किन्तु सेनानायक बहुलाश्व का पुत्र पिता की सत्ता का दुरूपयोग करता है। जब राम बहुलाश्व के पुत्र देवप्रिय को मृत्युदण्ड देते हैं तब बहुलाश्व आश्रम के नियमों के विरूद्ध शस्त्र सहित आश्रम में प्रवेश कर जाता है। वह राम से कहता है कि यह न्याय किसी की इच्छा से हुआ है, राजकुमार? राम कहते हैं कि न्याय किसी की इच्छा से नहीं होता, बहुलाश्व। बहुलाश्व क्रोध में नग्न खडग हाथ में लेता है और कहता है ––''यह न भूलो राजकुमार कि अयोध्या और अयोध्या

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0–97

की सेना यहाँ से बहुत दूर है। यहाँ मैं हूँ सेना नायक बहुलाश्व। मेरी आज्ञा के बिना, किसी का न्याय करने का तुम्हे क्या अधिकार था।''[1] यहाँ कोहली जी ने यह संकेत दिया है कि शासक अपनी सत्ता का उपयोग निजी स्वार्थ एवं परिवार जनों के भोग–विलास एवं रक्षा के लिए करते जरा भी नहीं हिचकिचाते थे।

राजनैतिक संन्धियाँ एवं षड्यंत्र

पौराणिक युग में विवाह सम्बन्धी निर्णय राजनैतिक धरातल पर ही लिए जाते थे। एक राजा दूसरे राजा के साथ अपने राजनैतिक संबंध दृढ़ करने के लिए भी विवाह का सहारा लेता था। उस समय राजा से पराजित होने के बाद अपनी युवा राजकुमारी को विजयी राजा को सौंपकर उससे संधि कर लेना आम बात थी। महापराक्रमी के सैन्य बल के सामने कैकेय नरेश की पराजय होती है तब दशरथ के मंत्रियों ने उचित अवसर जानकर कैकेय नरेश से पूछा था–क्या वे संधि करना चाहते है ? कैकेय नरेश के लिए इससे अधिक प्रसन्नता का प्रस्ताव क्या हो सकता था। वे तुरन्त सहमत हो गये। राजा से वचन ले मंत्री राजकुमारी कैकेयी के पास गये। उन्होने राजकुमारी से पूछा कि वह इस विकट स्थिति में अपने परिवार की रक्षा के लिए क्या कर सकती है। उसने कहा था, वह समाज की भलाई के लिए, देश के कल्याण के लिए, अपने परिवार की रक्षा के लिए, राष्ट्र–के सुख के लिए सब कुछ त्याग कर सकती है। मान–सम्मान। वह अपने प्राण दे सकती है। वह कठिन दुःख उठा सकती है। कैकेयी की दृढ़ता देखकर मंत्रियों ने उससे कहा था–''सम्राट दशरथ प्रौढ़ है। तुमसे आयु में बड़े है। पर यदि वे विवाह की इच्छा प्रकट करें तो तुम अस्वीकार मत करना। इसे अपने जीवन का अपमान मत समझो।

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –71

कर्तव्य समझकर इस कर्म को करो ताकि तुम्हारे परिवार तथा देश की रक्षा हो सके।''[1]

कैकेयी यह सब करने का वचन मंत्रियों को देती है। कैकेयी को देखते ही केकेय नरेश से संधि की पहली शर्त रखते हुए दशरथ कहते है कि कैकेयी का कन्यादान। तब शर्त रखने की बारी केकय नरेश की थी। वे दशरथ के सामने शर्त रखते हैं कि कैकेयी का पुत्र ही अयोध्या का युवराज होगा। अगर आप यह वचन दे सकते है। और कैकेयी का विवाह आपसे कर दूँगा। दशरथ तत्काल वचन दे देते है और कैकेयी का विवाह एक राजनैतिक संधि के रूप में दशरथ से हो जाता है।

विश्वामित्र सिद्धाश्रम की रक्षा के लिए दशरथ से राम को माँगते हैं तो साथ में लक्ष्मण भी जाते है। विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के जरिए राक्षसों का नाश करते है। विश्वामित्र राम द्वारा वनजा जैसी अपहृत नारियों का भी उद्धार करवाते है। विश्वामित्र चाहते है कि कौशल और जनकपुर का वर्षों का वैमनस्य समाप्त हो जाए तथा अज्ञातकुलशीला का उद्धार हो इस हेतु विश्वामित्र राम को जनकपुर ले जाना चाहते है। विश्वामित्र बार–बार राम से जनकपुर और सीता की चर्चा करते है। राम सोचते हैं कि–''गुरू ने इस संबंध के माध्यम से अन्याय और अत्याचारों के विरूद्ध लड़ने वाली मिथिला और अवध की चर्चा की है......... सीता से विवाह कर राम, अकारण दंडित अबला सीता की रक्षा करेंगे, दो राज्यों के वैमनस्य को समाप्त करेंगे, अत्याचार के प्रतिरोध को दृढ़ करेंगे......''[2]

राम यहाँ सीता के विवाह पर विचार करते है। विश्वामित्र राम को सीता के वीर्यशुल्का घोषित करने के बाद अजगव संचालन की शर्त की बात समझाते है। राम अजगव का संचालन कर लेते है और वीर्य शुल्का सीता को जीतते है। जब यह खबर दशरथ के पास

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 25–26
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0–158

पहुँचती है तो वे भी इस विवाह को विश्वामित्र द्वारा कराई गई संधि के रूप में स्वीकार कर लेते है, और सोचते है कि –''सीरध्वज की पुत्री सीता से राम के विवाह की बात दशरथ के मन में कभी आयी ही नहीं थी। इस संभावना के विषय में उन्होने कभी सोचा ही नहीं था। उनके मनोगत् में सीरध्वज का कोई अस्तित्व ही नहीं था। विश्वामित्र ने एक ही प्रकार से सीरध्वज से उनका परिचय करवाया था। और परिचय भी कैसा! ....सीता की अज्ञातकुलशीलता अवश्य उनके मन में खटकी थी, किन्तु सीता वीर्य–शुल्का थी। राम ने उसे अपने शौर्य से जीता था। कोई क्षत्रिय पिता ऐसे विवाह में बाधा नहीं डाल सकता और सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि गुरू वशिष्ठ ने भी इसमें कोई आपत्ति नहीं की थी। ....[1]

अन्याय का प्रतिकार

पौराणिक युग में मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने अन्याय का प्रतिकार किया था। इनको प्रेरित करने वाले विश्वामित्र थे। वे दशरथ से अन्याय के प्रतिकार के लिए राम को माँग लाये थे। राम को अन्याय के प्रतिकार का कार्य सौपंने से पहले वे राम को समर्थ बनाना चाहते थे और इस कार्य को पूर्ण करने के लिए वे उनको दिव्यास्त्रों का ज्ञान देते है। राम विश्वामित्र से पूछते है कि आप मुझसे क्या करवाना चाहते है, गुरूदेव? तब विश्वामित्र कहते है––'पुत्र! सामान्य शब्दों में कहूँगा–अन्याय का विरोधी प्रत्येक मूल्य पर अन्याय का विरोध करता है। वह अन्याय चाहे तुम्हारे अपने परिवार में हो, अपने राज्य में हो, चाहे राज्य के बाहर हो। विशेष रूप से कहूँगा, निषपक्ष मौलिक, मानवीय न्याय का पक्ष लेकर, जीवन व्यतीत करने वाले उन ऋषियों की रक्षा, जो हिमालय से लेकर दक्षिण में महासागर तक विभिन्न स्थलों पर बैठे सत्य की रक्षा कर रहे है। वे ऋषि तथा उनके

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –183

आश्रम सर्वथा सुरक्षा विहीन है, पुत्र! जिस भी समय कोई राक्षस चाहता है, उन पर आक्रमण कर उनकी हत्या कर देता है, उनका माँस खा जाता है, उनकी अस्थियाँ चबा जाता है। यदि ये उच्छृंखल राक्षस अपनी इस क्रिया की इसी प्रकार पुनरावृत्ति करते रहेंगे तो क्रमशः ये ऋषि समाप्त हो जाएँगे। इस देश में स्वतंत्र, मौलिक चिंतन समाप्त हो जाएगा, न्याय का विचार समाप्त हो जाएगा, सदाचरण और संस्कृति समाप्त हो जाएगी। मै इन समस्त चीजों के लिए रक्षा का वचन चाहता हूँ।''[1] राम अन्याय के विरूद्ध लड़ने के लिए कटिबद्ध थे। वे ताड़का का वध करते है। विश्वामित्र उनको कुटिया में ले जाते हैं और ताड़कावध के बाद की परिस्थिति से अवगत् कराते है। विश्वामित्र चाहते हैं कि अन्याय के विरूद्ध सारी प्रजा लड़ने के लिए तैयार हो। वे राम से कहते है तुम राक्षसों का नाश करने के साथ–साथ प्रजाजनों का तेज तथा आत्मविश्वास लौटाओं, न्याय में उनकी खोई आस्था और निष्ठा उनमें पुन' प्रतिष्ठित करों। विश्वामित्र पुनर्वसु को आश्रमवासियों को आँगन में एकत्रित करने के लिए कहते है। आश्रमवासी आँगन में एकत्रित हो जाते हैं तब विश्वामित्र राम–लक्ष्मण के साथ आते है। वे अपना स्थान ग्रहण करते है। विश्वामित्र आश्रम वासियों से कहते है–''तपस्विगण ! अब तक राक्षसों से हमारा केवल संघर्ष चल रहा था।, आज हमने अपनी ओर से युद्ध की घोषणा कर दी है। राम और लक्ष्मण आश्रम की रक्षा के लिए मध्य है। किंतु न्याय का युद्ध अकेले व्यक्ति का युद्ध नहीं है। यह युद्ध प्रत्येक आश्रम वासी को ही नहीं, जनपद की सम्पूर्ण प्रजा को लड़ना है। मैं कह नहीं सकता कि राक्षसों का आक्रमण रात्रि में किसी समय होगा अथवा प्रातः किंतु हमें इसी क्षण से पूर्णतः सावधान रहना है। जिसके पास जो भी शस्त्र है, वह उसे धारण करे और सन्न्द्ध रहे।''[2]

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –45

[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0– 57

सांस्कृतिक चेतना

"संस्कृति" शब्द का अर्थ होता है–संस्कार, शुद्धता या परिष्कृत करना। परम्परा से प्राप्त विचार, मूल्य, कला, शिल्प, वस्तु या आदत संस्कृति के अंग है। आदर्शों, मूल्यों, स्थापनाओं और मान्यताओं के समूह को संस्कृति कहा जा सकता है। संस्कृति के अनुसार ही किसी समाज की जीवन शैली का निर्माण होता हैं इसका संबंध मनुष्य के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक एवं कलागत जीवन के विविध पहलुओं से है। भारतीय दर्शन के अनुसार संस्कृति के पाँच अवयव है––कर्म, दर्शन, इतिहास, वर्ण तथा रीति–रिवाज। बाबू गुलाब राय संस्कृति का विशाल क्षेत्र मानते हुए उसके अन्तर्गत साहित्य, कला, संगीत, दर्शन, धर्म, लोकवार्ता तथा राजनीति का समावेश करते है। इस प्रकार स्पष्ट भी है कि संस्कृति की अभिव्यक्ति इतिहास, समाज–संगठन, राजनीति, धर्म, दर्शन, शिक्षा, कला और साहित्य में होती है।

साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। वह जनमानस की अन्तबाह्य प्रति छवियों का प्रकाशन करने वाला ज्ञान–राशि का संचित कोश है अतः वह किसी देश या काल के संस्कृति के ज्ञान का सर्वाधिक विश्वस्त, प्रामाणिक आधार होता है। साहित्यकार खासकर उपन्यासकार अपनी कथा–परीधि में किसी एक युग के प्रदेश विशेष को या समाज विशेष को जीवंत करने की कोशिश करता है। इस कोशिश के अन्तर्गत वह लक्ष्य समाज के मानव जीवन एवं उसकी विभिन्न समस्याओं को अभिव्यक्ति देना चाहता है। उस समाज–विशेष की सामाजिक या राजनैतिक समस्याओं का वर्णन करते हुए उपन्यासकार उसके सांस्कृतिक जीवन की उपेक्षा नहीं कर सकता। वह उस समाज की विभिन्न जातियों एवं उनके रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा, संगीत, कला, शिक्षा, साहित्य, धर्म आदि अनेकानेक पहलुओं का चित्रांकन करता है, उनसे सम्बन्धित समस्याओं व मान्यताओं को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार उपन्यासकार का

लक्ष्य समाज के सांस्कृतिक जीवन का चित्रांकन करना है। आधुनिक हिन्दी उपन्यासकार श्री नरेन्द्र कोहली ने अपने पौराणिक उपन्यास 'दीक्षा' के अन्तर्गत रामयुगीन समाज के सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है।

ऋषि–मुनि, ब्राह्मण एवं देवताओं का आचरण

वर्तमान भारत में धर्म की आड़ में व्यभिचार, भोग–विलास, अनैतिकता और आर्थिक लूट–खसोट होती दिखाई देती है। ये सब जघन्य कृत्य करने वाले मंदिर के महंत, मठाधीश, स्वामी साधुबाबा, पंडे–पुजारी ही होते है। प्राचीन काल में भी कुछ ऐसे ऋषि और आचार्यों के ऐसे चरित्र मिलते है, जो अपने निजी स्वार्थ के लिए धर्म एवं प्रजा के सद्भाव का दुरूपयोग करते थे। उनके आचरण में अनेक प्रकार की विकृतियाँ परिलक्षित होती हैं,जिन्हे कोहली जी ने अपने उपन्यास 'दीक्षा' में अभिव्यक्ति दी है। उपन्यास में कोहली जी ने उस समय के प्रतिष्ठित ऋषि वशिष्ठ और शतानन्द के आचरण का पर्दाफाश करते हुए विश्वामित्र से कहलवाया है कि–''वशिष्ठ। आर्य शुद्धता का प्रतीक है। आर्यत्व को सांम्प्रदायिक रूप देने का उपक्रम। जो आर्य संस्कृति के प्रसार में सबसे बड़ी बाधा है। वशिष्ठ आर्यों को आर्येत्तर जातियों के सम्पर्क में नहीं आने देना चाहता। इसलिए वह आर्य राजाओं को आर्यावर्त से बाहर निकलने के लिए प्रोत्साहित नहीं करेगा। ब्रह्मतेज के गौरव पर जीने वाला वशिष्ठ इन राजाओं को कूपमण्डूक बना कर छोड़ेगा। ....और शतानन्द! निरीह शतानन्द। एक तो अनासक्त सीरध्वज की छत्रछाया में रहने वाला आद्यात्मिक चिंतन करनेवाला ऋषि, जिसे राजनीति से कुछ नहीं लेना और ऊपर से अपने माता–पिता के पार्थक्य से पीड़ित। गौतम अहल्या को छोड़ नये आश्रम में जा बैठे है, और अहल्या समाज से बहिष्कृत, तिरस्कृत एकांत शिलावत् अपना जीवन व्यतीत कर रही है। शतानन्द में इतना

भी साहस नहीं कि वह अपनी माँ को सामाजिक मान्यता दिला सके – उसका पवित्र ब्राह्मणी के रूप में सामाजिक अभिषेक कर सके....''[1]

यहाँ कोहलीजी ने वशिष्ठ और शतानन्द के आचरण से स्पष्ट करना चाहा है कि उस समय के उच्च पद पर स्थित ऋषि अपने पद का महत्त्व रखने के लिए नीति विरूद्ध आचरण करने में भी नहीं हिचकिचाते थे।

सिद्धाश्रम में राक्षसों का आतंक जब बढ़ जाता है तो विश्वामित्र आश्रम की रक्षा के लिए अयोध्या नरेश के पास जाने का निर्णय करते है, जहाँ गुरू के रूप में वशिष्ठ विध्यमान है। विश्वामित्र के अयोध्या पहुँचने की खबर मिलते ही दशरथ स्वयं उनको लेने के लिए द्वार तक पहुँच जाते है। वे उनकी अगवानी करके उन्हे भीतर ले आते है। वशिष्ठ उनके स्वागत के लिए आगे नहीं आते। विश्वामित्र राजा दशरथ से उनके प्रशासन की कुशल–क्षेम पूछते हैं और उसके बाद वे वशिष्ठ से पूछते हैं कि आप प्रसन्न तो हैं महर्षि? कोहली जी ने उस समय के राजकुमारों के व्यवहार की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए ''दीक्षा'' उपन्यास में लिखा है––''वे जानते थे कि वशिष्ठ उनके आने से प्रसन्न नहीं हो सकते। उनके शिष्य नृप की सभा में कोई अन्य ऋषि सम्मान पाए, यह उन्हे कैसे प्रिय होगा। यदि ऋषियों, विद्वानों, चिंतकों, बुद्धि जीवियों में इस प्रकार अहंकार तथा परस्पर द्वेष न होता तो वशिष्ठ राजसभा से उठकर उनके स्वागत के लिए दशरथ के साथ बाहर आये होते, सभा में उनके आने पर प्रसन्न मुख उनका स्वागत करते। इस प्रकार स्तबध से किंकर्तव्य विमूढ़ न बैठे रह गये होते।'[2]

विश्वामित्र सिद्धाश्रम की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को लेकर अयोध्या से निकलते है तो वे रास्ते में राम के समक्ष सिद्धाश्रम की दयनीय स्थिति से अवगत् कराते जाते है। राम विश्वामित्र से

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –16
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –18

कहते है कि आर्य शासन पद्धति से मैं परिचित हूँ, किंतु राक्षस–व्यवस्था का ज्ञान मुझे नहीं है। तब विश्वामित्र राम से कहते है कि यह वशिष्ठ की शुद्धतावादी प्रणाली का परिणाम है। और वे रावण के आतंक से राम को अवगत कराते है। उस समय राम विश्वामित्र से कहते है कि इसका विरोध क्यों नहीं किया जाता? विश्वामित्र कहते हैं कि इसका विरोध कौन करे? राम कहते हैं कि आर्य सम्राट? तब विश्वामित्र राज सम्राटों की स्थिति की ओर इशारा करते है जो राजगुरूओं द्वारा उत्पन्न की हुई है––''आर्य सम्राट के गुरू के पद पर वशिष्ठ बैठा है, जो मानवमात्र को समान नहीं मानता, वह अन्य जातियों से आर्यों को श्रेष्ठ मानता है, आर्यों से ब्राह्मणों को श्रेष्ठ मानता हैं और पुरूषों को नारियों से श्रेष्ठ समझता है। वह शबरों, किरातों, निषादों, वानरों, रक्षों, कील–भीलों जैसी अनेक आर्येत्तर जातियों तथा दूर–दूर तक फैले हुए वशिष्ठ–दर्शन को न मानने वाले आर्य ऋषि मुनियों पर होने वाले अत्याचारों से पीडित नहीं होता। वह आर्य सम्राटों को आर्यावर्त से बाहर निकलने नहीं देता।''[1]

जनकपुर में सीता के स्वयंवर की शर्त पूरी करके राम सीता को लेकर अयोध्या की ओर निकलते हैं तो रास्ते में परशुराम उन्हे रोकते हैं और वे दशरथ से क्रोधित होकर कहते हैं कि तुम्हारे पुत्र राम ने ''अजगव'' का ध्वंस कर दिया है। तब लक्ष्मण स्वयं को रोक नहीं सकते और कहते हैं कि यदि आपने यह सुन ही लिया है तो इसमें चीखने की क्या बात है। परशुराम लक्ष्मण पर और अधिक क्रोधित होते हैं वे लक्ष्मण उनसे कहते है कि आप न तो आधुनिक हैं, न वर्तमान परिस्थितियों से परिचित ही लगते है। आजकल किसी को आँखे दिखाकर अपना रौब नहीं मनवाया जा सकता। तब परशुराम दशरथ से कहते हैं कि तेरा यह पुत्र जीवित नहीं बचेगा। राम के हस्तक्षेप करने पर परशुराम कहते हैं तुम और तुम्हारा यह छोटा भाई दुष्ट, अन्यायी क्षत्रिय। तुम यह नहीं जानते कि मैने कितनी बार इस

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –38

पृथ्वी को क्षत्रिय से शून्य कर इसका पाप काटा है। तब राम भी चुनौती भरे स्वर में परशुराम को वास्तविकता से अवगत कराते हुए कहते हैं कि––"क्रांतिकारिता और रूढ़िवादिता भी साथ–साथ चल पाती है क्या? आप कितने रूढ़िवादी हो गये है–आपने कभी सोचा है? यदि एक समय एक क्षत्रिय राजा जन विरोधी सैनिक लुटेरा था तो क्या मान लिया जाए कि प्रत्येक राजनीतिक नेतृत्व जन–विरोधी पशुबल ही होगा––या यदि एक समय 'अन्याय' क्षत्रिय राजा के रूप में प्रकट हुआ तो क्या वह सदा उसी रूप में प्रकट होता रहेगा?

आपने कैसे मान लिया कि उन अत्याचारी क्षत्रियों को मारकर आपका कार्य सदा के लिए सम्पन्न हो गया ? आपने सतत् प्रयत्नशीलता का मूल्य पहचाना ही नहीं। क्या आपका क्रान्तिकारी मन यह नहीं जानता कि समय के साथ, अन्य वस्तुओं के समान अत्याचार का रूप भी बदल जाता है ? आपने उसमें केवल एक रूप को पहचाना है। इसलिए अपने समय के क्षत्रियों की हत्या कर आप अपना परशु लिए–दिए महेन्द्रगिरी पर जा बैठे। आपने यह नहीं देखा कि आज जन विरोधी राजनीति, पशुबल तथा धन की शक्तियों ने संयुक्त मोर्चा बनाया है और वह राक्षस शक्ति के रूप में अभिव्यक्ति पा रहा है। कितना अत्याचार कर रहे हैं राक्षस। बुद्धिजीवी ऋषियों की हत्याएँ हो रही हैं, ताकि जन सामान्य को उचित नेतृत्व मिल सके, प्रजा का धन लूटकर उन्होने सोने की लंका बना ली है, नारियों का अपहरण हो रहा है और नारी–पुरुष के सहज संबंध को पाशविक शक्तियों से संचालित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह सब आपको नहीं दिखता? आपकी दृष्टि मंद पड़ गई। आपका मस्तिष्क सो गया है। आप वर्तमान के दायित्व को त्याग, प्राचीन कृत्य का यश ओढ़े हुए, उचित–अनुचित, न्याय, अन्याय का विचार छोड, लोगों को डराने

धमकाने को रह गये है। और फिर भी आप चाहते हैं कि लोग आपका सम्मान करें।''[1]

यहाँ कोहली जी ने परशुराम के सम्मान के प्रसंग को लेकर इस तथ्य की ओर प्रकाश डालना चाहा है कि न्याय का शत्रु सदा एक ही रूप में नहीं आता। अत्याचार को उसके नये रूप में भी पहचानना चाहिए।

गौतम के आश्रम में उत्सव के अवसर पर इंद्र को आमंत्रित किया जाता है। किन्तु इंद्र जब गौतम की पत्नी अहल्या को देखता है तो उसके रूप पर मुग्ध हो जाता है। वह उसके सामने काम–आह्वान का प्रस्ताव रखता है किन्तु अहल्या उसे ठुकरा देती है। तब इंद्र निर्णय करता है कि सहज नही ंतो असहज रूप से अहल्या को प्राप्त करना होगा। जब गौतम ब्रहंमुहुर्त में कुटिया से निकलकर स्नान के लिए जाते हैं तो इंद्र उनकी अनुपस्थिती में कुटिया में प्रवेश करता है और सोई हुई अहल्या के साथ बलात्कार करता है। ''दीक्षा'' उपन्यास में नरेन्द्र कोहली ने इंद्र द्वारा अहल्या पर बलात्कार का सटीक वर्णन करते हुए लिखा है –''अहल्या की चीख और दो शरीरों के संघर्ष की हिलडुल से शत की आँखें खुल गई और साथ ही उसका गला भी खुल गया। पाँच वर्षों का बालक साफ–साफ देख रहा था कि कुटिया में उपस्थित पुरुष उसका पिता न होकर कोई और पुरुष था, जिसके चेहरे पर अत्यंत दुष्टता के भाव थे। फिर उसकी माँ उस पुरुष से लड़ रही थी और उसके चंगुल से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहीं थी। शत जोर–जोर से रोता चला गया ....अहल्या चीखती रही, चिल्लाती रहीं, हाथ पैर पटकती रही, अपने दाँतों तथा नखों से, इन्द्र से लड़ती रही .....किन्तु इन्द्र उस पर हावी होता चला गया। इन्द्र ने उसके केषों को अपने बाएँ हाथ की मुट्ठी में इस प्रकार जकड़ रखा था। कि वह अपना सिर तनिक भी नहीं हिला सकती थी। उसकी जंघा को अपने बलिष्ठ घुटनों के नीचे दबाकर, इंद्र ने उसके शरीर

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –187

को कीलित कर दिया था। ...अहल्या पूरी तरह असमर्थ हो चुकी थी।''[1]

यहाँ नरेन्द्र कोहली जी ने देवराज इन्द्र की देवत्वहीनता अर्थात पाश्विकता का वर्णन कर उसके झूठे अहम् और पाखण्ड का पर्दाफाश कर दिया है।

धार्मिक आडम्बर एवं अंधश्रद्धा

प्रारम्भ से ही भारतीय जन समुदाय धार्मिक आडंबरों एवं अंधश्रद्धाओं का शिकार बनता आया है। स्वार्थी शासकों एवं पाखडीं ऋषि, आचार्य आदि की कुनीतियों और दुष्प्रवृत्तियों के कारण पूरा समाज धार्मिक आडंबरों एवं अंधश्रद्धाओं के जाल में उलझा हुआ था। पौराणिक युग में मिथिला प्रदेश में गौतम उनके आश्रम और मिथिला प्रदेश के ज्ञान को मान्यता मिली थी। सात दिनों का सम्मेलन था। सात दिनों तक ऋषि अभ्यागत व्याख्यान देकर और विचार–विमर्श कर उनके आश्रम की शोभा बढ़ाने वाले थे। जिसमें देवराज इंद्र को भी आमंत्रित किया गया था। जिसके लिए एक बड़ी कुटीर का निर्माण किया गया था और आश्रम के नियमों के सर्वथा विरूद्ध मदिरा का भी प्रयोग किया गया था इंद्र गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या को देखकर विचलित हो गया था। वह अपना धर्म भी भूल जाता है। कोहली जी ने ''दीक्षा'' में इंद्र के इस आडम्बर को अनावृत किया है वे लिखते है –''इंद्र आश्रम द्वार पर स्वागत् करती हुई अहल्या को देखकर एकदम विचलित हो गया था। वह अपना धर्म भी भूल जाता है। वह भूल गया कि वह इन्द्र है– आर्य ऋषियों का पूज्य अभ्यागत् जिससे सच्चरित्रता की कुछ विशेष अपेक्षाएँ है। वह भूल गया कि वह यहाँ आमंत्रित होकर आया है और यह आर्यावर्त्त का एक पवित्र आश्रम है। अहल्या इस आश्रम के कुलपति की पत्नी है, और वह अपने पति के प्रति पूर्ण समर्पित है व निष्ठावान है। वह सब कुछ भूल गया। याद रहा केवल

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 109–110.

कामुक मन का चीत्कार। स्वागत के पश्चात् विदा होते हुए उसने अहल्या के ऊपर अपने वैभव का जाल फेंका था। और उसे अपने एक वाक्य से याद दिलाया था कि अत्यंत रूपवती स्त्री होते हुए भी वह एक कंगाल ऋषि से बँधी हुई व्यर्थ ही इस वन में कष्ट उठा रही है। भला ऐसी अद्वितीय सुंदरी का वैभव, समृद्धि तथा विलास के उपकरणों से वंचित, इस प्रकार इस वन में पड़े रहने का क्या अर्थ? ऐसी सुन्दरी के महत्त्व को कोई जड़ ऋषि क्या समझेगा। उसका आनन्द तो काम–कला प्रवीण इन्द्र जैसा कोई समृद्ध वैभवशाली व्यक्ति ही उठा सकता है। ऋषि को संतान उत्पन्न करने के लिए कोई स्त्री चाहिए ही तो इन्द्र उसे कोई साधारण दासी दे देगा।...''[1]

यहाँ कोहली जी ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि इन्द्र जैसे देवता भी धर्म की आड़ में घृणित कार्य करते हुए नहीं हिचकिचाते थे। उनकी कथनी और करनी में अंतर होता था।

विश्वामित्र उस सात दिनों के सम्मेलन में उपस्थित थे। वे अहल्या पर इंद्र द्वारा किए गये अत्याचार को लेकर इंद्र के अहल्या को दोष देकर वहाँ से अंदडित चले जाने तक की घटना के साक्षी थे। कोई भी गौतम का साथ देने के लिए तैयार नहीं था। और विश्वामित्र भी चाहते हुए गौतम का साथ नहीं दे पाते। उस समय वे अपने धार्मिक अनुष्ठान के कारण उचित–अनुचित का फैसला नहीं कर पाये थे। आज राम के सापने अपनी भूल स्वीकार करते हुए वे कहते है–''मैंने जन्मतः क्षत्रिय होते हुए भी, स्वयं को ब्रह्मर्षि मनवाने का हठ ठाना था। बड़े लंबे और विकट संघर्ष के पश्चात् मैं प्रतिष्ठा पा सका था, पुत्र ! वह प्रतिष्ठा मुझे अत्यधिक प्रिय थी। कदाचित मैं भूल गया कि सत्य क्या है, न्याय क्या है और मेरा कर्तव्य क्या है। मुझे याद रहा कि मुझे कुछ भी ऐसा नहीं करना चाहिए, जिससे कोई मेरे ब्रह्मर्षित्व पर ऊँगली उठा सके। समस्त ब्रह्मर्षि इन्द्र को दोषी ठहराना अस्वीकार कर चुपचाप वहाँ से चले गये हैं, यदि मैंने अहल्या

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –103

का समर्थन और इन्द्र का विरोध किया तो कोई यह न कह दे कि एक क्षत्रिय धर्म का नियामक नहीं हो सकता।''[1]

यहाँ कोहली जी ने उन ऋषियों के आडंबर को नग्न किया है जो अपनी प्रतिष्ठा के भंग होने के डर से न्याय, नीति, धर्म और कर्तव्य से अपना मुँह मोड़ लेते थे।

यज्ञ और अनुष्ठान

इस देश में यज्ञ–अनुष्ठान की एक लंबी परंपरा प्राप्त होती है। प्राचीन मान्यता के अनुसार लोक कल्याण के लिए यज्ञ कराये जाते थे। पहले लोक कल्याण के लिए यज्ञ कराये जाते थे। किन्तु रावण जैसे राक्षस सैनिक अपने अभियानों से उसे ध्वस्त करने का प्रयत्न करते हैं वे यज्ञ के महत्व को नष्ट करना चाहते थे। विश्वामित्र विवश होकर राम को माँगने के लिए दशरथ के पास गये थे। कोहली जी ने ''दीक्षा'' में ही राक्षस ऋषि मुनियों के यज्ञ में किस प्रकार बाधा डालते थे, यह शुरूआत में ही बताया। और इसकी जानकारी देते हुए यह कहलवाया है कि– ''जब कभी भी मैं किसी नये प्रयोग के लिए यज्ञ आरम्भ करता हूँ, ये राक्षस मेरे आश्रम के साथ इसी प्रकार रक्त और माँस का खेल खेलते है। रक्त–माँस की इस वर्षा में कोई भी यज्ञ केसे सम्पन्न हो सकता है।''[2]

उस समय राक्षस किसी भी यज्ञ को सम्पूर्णतः सम्पन्न नहीं होने देते थे। वे यज्ञ के धुएँ को देखकर वहाँ उपस्थित हो जाते थे और उस यज्ञ में विघ्न डालते थे। ताड़का वध के बाद विश्वामित्र ने फिर से यज्ञ की शुरूआत की थी। यज्ञ आरम्भ करना राक्षसों को चुनौती देना था। और उसके रक्षक थे राम और लक्ष्मण कोहली जी ने इसका वर्णन करते हुए ''दीक्षा'' उपन्यास में लिखा है –– ''यज्ञ आरंभ हुआ। वेदी में अग्नि प्रज्वलित हुई। धुआँ आकाश की ओर उठा।

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –116–117

[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –2

मंत्रोच्चार का शब्द वायु–मंडल में प्रसारित होने लगा और उपस्थित प्रत्येक जन अपने स्थान पर सतर्क और सावधान हो गया। यज्ञ आरम्भ करना राक्षसों को चुनौती देना था और यह यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो गया उनकी शक्ति की अस्वीकृति की घोषणा हो गयी।''[1] राक्षण वहाँ आक्रमण के लिए आते हैं किन्तु राम लक्ष्मण ग्रामजनों की सहायता से उनको खदेड देते हैं।

इंद्र जब गौतम के आश्रम में अहल्या पर बलात्कार करके अदंडित भाग निकला था। उसके कुछ समय पश्चात् मिथिला नरेश गौतम को नये आश्रम की स्थापना कर कुलपति के रूप में नियुक्त करते है। अहल्या के समझने पर गौतम पुत्र शत को लेकर आश्रम पहुँचते हैं। और आश्रम की यज्ञशाला में बैठते है। इस प्रथम यज्ञ से सम्राट स्वयं उपथित रहते है। यज्ञ सम्पन्न होता है तो गौतम इन्द्र को शाप देते है। इस घटना का वर्णन करते हुए कोहली जी ने उपन्यास में लिखा ''यज्ञ से उठकर उन्होने सम्राट का आर्शीवाद नहीं लिया आश्रमवायियों के सुख की कामना नहीं की। उन्होने मंत्र अभिफलित जल अंजली में लिया, सूर्य की ओर मुँह किया और स्थिर–गंभीर तथा उच्च स्वर में बोले, मैं आश्रम का कुलपति गौतम , इस पवित्र जल को हाथ में लेकर, आज देवराज इंन्द्र को शाप देता हूँ, अपनी दुश्चरित्रता के कारण, इंद्र देवराज होते हुए भी आज से आर्यावर्त्त में सम्मान्य तथा पूज्य नहीं होगा उसे किसी यज्ञ, हवन, पूजा, ज्ञान–सम्मेलन अथवा किसी भी शुभ कार्य में आमंत्रित नहीं किया जाएगा। आज से देवोपासना में इंद्र का कोई भाग नहीं होगा, उसकी पूजा नहीं होगी।''[2]

उस समय राजा भी ऋषियों के यज्ञ की रक्षा करते थे और उनके आदेशों का पूर्णतः पालन करते थे। गौतम जब इंद्र को शापित करते हैं तो मिथिला नरेश उस शाप की रक्षा का वचन देते हुए कहते है–''मैं मिथिला–नरेश सीरध्वज घोषणा करता हूँ कि जब तक

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –63
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0–141

कुलपति गौतम अपने पद की मर्यादा का पालन करेंगे, उनके शाप की रक्षा का दायित्व मुझ पर होगा।''[1]

धर्म और राजनीति

आरंभ से ही भारत में धर्म और राजनीति की साँठ–गाँठ होती रही है। कभी शासक धार्मिक सद्भावना का दुरूपयोग कर अपने शासन को निष्कंटक बनाने की कोशिश करता था तो कभी ऋषि आचार्य जैसे धार्मिक व्यक्ति शासकों से अपना सम्बन्ध स्थापित करके अपने स्वार्थ की पूर्ति करना चाहते थे। पौराणिक युग में राजा राजगुरू के साथ परामर्श करके महत्वपूर्ण निर्णय लेते थे। राजगुरू राजनीति को ध्यान में रखकर धर्म को आड़ बनाकर अपने निर्णय देते थे। अयोध्या में राजगुरू के रूप में वशिष्ठ विराजमान थे। जो आर्य संस्कृति के प्रसार में सबसे बड़ी बाधा थे। राम ब्रह्मचर्य की आयु पूर्ण कर चुके थे, अब उनके विवाह का समय हो गया था। दशरथ ने उनके .विवाह का समय हो गया था। दशरथ ने उनके विवाह को लेकर चर्चा आरंभ कर दी थी। राम के विवाह के संबंध में दशरथ वशिष्ठ से पूछते हैं कि गुरूदेव का क्या आदेश है? तब वशिष्ठ अपना निर्णय सुनाते हुए कहते हैं–''सम्राट का विचार अति उत्तम है। राम का विवाह कर देना चाहिए, वे ब्रह्मचर्य की आयु पूर्ण कर चुके है, किंतु सम्राट को विवाह संबंध स्थापित करते हुए अपने वंश के अनुकूल समधी की खोज करनी चाहिए। इस विषय में यदि मेरी इच्छा जानना चाहें तो मैं कहूँगा कि सम्राट यदि किन्ही राजनैतिक कारणों से भी चाहें तो कुमार का विवाह व्रात्यों में न करें। जिन्होने वैदिक कर्मकाण्ड का त्याग कर, स्वयं को ब्रह्मवादी चिंतन में विलीन कर भ्रष्ट कर लिया है। सम्राट! राजनीति का अपना महत्व हैं, किन्तु आर्य जाति के रक्त कर्म, संस्कृति एवं विचारों की शुद्धता का महत्व उससे भी कही अधिक है। ....पूर्व के अतिरिक्त दक्षिण में भी ऐसा कोई राजवंश मुझे

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –142

नहीं दिखता, जो रघुकुल का उपयुक्त समधी हो सके। केवल उत्तर एवं पश्चिम ....।[1]

यहाँ कोहली जी ने इस ओर प्रकाश डाला है कि उस समय वशिष्ठ जैसे राजगुरू आर्यों को आर्येत्तर जातियों के सम्पर्क में नहीं आने देना चाहते थे। वे आर्य राजाओं के आर्यावर्त से बाहर न निकलने के प्रति कटिबद्ध थे।

उस समय गौतम के आश्रम में उपकुलपति के पद पर अमितलाभ विराजमान था। वह कुलपति बनने का स्वप्न देख रहा था। उसने कुलपति बनने के लिए बहुत सारे प्रयत्न किए थे। ऐसे ही समय में इंद्र द्वारा गौतम पत्नी अहल्या से बलात्कार होता है। इस प्रसंग से उपकुलपति का मन बल्लियों उछल जाता है। वे तो बहुत थोड़े की इच्छा कर रहे थे, और यहाँ ऐसा अवसर मिला था कि उनकी आकांक्षा से बहुत अधिक उन्हे सहज ही मिल सकता था। वह सोचता है कि इस समय यदि प्रचार से इस आश्रम का सम्मान कम कर दिया जाए, तो इसका अवमूल्यन हो जाएगा। मिथिला में प्रथम श्रेणी का अन्य कोई आश्रम न होने के कारण एक नये आश्रम की स्थापना हो सकती है–और मिथिला में स्थापित होने वाले उस नये आश्रम का कुलपति सिवाय आचार्य अमितालाभ के सिवा और कौन हो सकता है? वह आश्रम वासियों के सम्मुख कहता है कि यह आश्रम पूर्णतः भ्रष्ट हो चुका है। जिस आश्रम के कुलपति की धर्मपत्नी का चरित्र पतित हो, वहाँ अध्ययन–अध्यापन, ज्ञानार्जन, तपस्या, कुछ भी नहीं हो सकता। अमितलाभ के इस प्रस्ताव का आचार्य ज्ञान प्रिय विरोध करते हुए कहते हैं क किसी पापी द्वारा किसी निर्बल नारी के प्रति

अत्याचार से आश्रम कैसे भ्रष्ट हो गया? तब अमितलाभ उन्हे कहते हैं कि––"आचार्य ज्ञानप्रिय! ऋषि गौतम् से मेरी कोई शत्रुता नहीं है। न इसमें मेरा कोई स्वार्थ है। मैं जो कुछ कहा रहा हूँ ब्रह्मचारियों–सन्यासियों–तपस्वियों के लाभ तथा आश्रम के सम्मान के

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –14

लिए कह रहा हूँ। स्वय देवराज ने कुलपति की पत्नी के विषय में कहा है कि उसने उनका काम–आह्वान किया था। कोई निर्णय तो लेना ही होगा। कुलपति की पत्नी के विरूद्ध आरोप है। कुलपति इस समय अपना मानसिक संतुलन खो बैठे हैं। तो निर्णय का उत्तरदायित्व किस पर है? इस आश्रम के उपकुलपति–स्वस्थ प्रदत्त अधिकार के आधार पर मैं यह घोषणा कर रहा हूँ कि यह आश्रम भ्रष्ट हो चुका है। मेरा विचार है कि हमें अन्यत्र एक नया आश्रम स्थापित करना चाहिए, और उसके लिए मिथिला–नरेश से मान्यता की याचना करनी चाहिए। क्या आप लोग मुझसे सहमत है।"[1]

साहित्य और युग चेतना की उपरोक्त चर्चा के अंत में कहा जा सकता है कि दोनों का सम्बंध अटूट है। साहित्यकार किसी युग विशेष को अपनी कृति में उकेरना चाहता है और इसके लिए अनिवार्य है उस युग की विशेष प्रवृत्तियों तथा समग्र परिवेश को पहचाना जाए प्रस्तुत अध्याय में नरेन्द्र कोहली जी के द्वारा रचित 'दीक्षा में अध्ययन द्वारा युग चेतना के विभिन्न पक्षों, उचित–अनुचित की परख कर नरेन्द्र कोहली जी इस कृति के युग विशेष को प्रतिबिम्बित में सफल व समर्थ रहे है। उनके द्वारा दीक्षा में तत्युगीन समाज की विभिन्न प्रथाओं, रीति–रिवाजों, अंध–श्रद्धा, छल–कपट पाखण्ड, अन्याय जैसी समस्याओं का बखूबी चित्रण किया गया है।

समय स्थान और समाज के अनुरूप राजनीति भी अपने बाल रूप को बदलती है किन्तु उसके मूल तत्व वहीं के वही है। यही कारण है कि कोहली जी ने वर्तमान भारत की राजनीतिक परिस्थितियों को अभिव्यक्ति देने के लिए पौराणिक कथ्यों का मिथकीय प्रयोग किया है।

कोहली जी ने पौराणिक युग की संस्कृति के विघटन कारी तत्वों को भी इस प्रकार बेनकाब किया है कि पाठकों को वर्तमान संस्कृति के संदर्भ में सोचना पड़ता है और इसी में साहित्य की सफलता और सार्थकता निहित है।

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –120

'दीक्षा' उपन्यास में मिथकीय चेतना

मानवीय सभ्यता का पूरा इतिहास मिथकों में संग्रहित है। ज्ञान–विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अर्न्तगत व्याख्यायित और विवेचित करके अनेक विद्वानों ने मिथक की सार्थकता को असंदिग्ध बनाया है। प्रत्येक युग का मिथक अपने युग का वास्तविक परिचय सुनाता है। मानवीय सभ्यता के विकास के प्रत्येक क्षण के साथ सहयात्रा करने के कारण प्रत्येक युगीन यथार्थ को आत्मसात करने में मिथक सफल हुआ है। आधुनिक युग तक इसकी अभिव्यक्ति क्षमता बरकरार है। पहले, मिथक की चर्चा पौराणिक एवं आलौकिक कथाओं के अर्न्तगत होती थी। लेकिन आज मिथक सामाजिक एवं मानवीय यथार्थ के साथ घुल–मिल गया है। यानि पौराणिक मिथकों की नये ढ़ंग से व्याख्या हो रही है। नये–नये मिथकों का गढ़न हो रहा है। मिथकों में हमारे जीवन के सच और सभी विचार और भावनाएँ नीहित है। मानवीय भावनाओं की सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति करने के कारण मिथकों के प्रति लोगों की आस्था अधिक रहती है।

पौराणिक कथावस्तु के आधार पर लिखा हुआ उपन्यास उपन्यास ही कहलाता है पुराण नहीं।'' मिथक'' का यह लचीलापन ही उपन्यास के लिए उपयोगी वस्तु है। स्वयं नरेन्द्र कोहली का मानना है– ''भारतीय साहित्य में ''मिथक'' को असत्य या असत्य के आस–पास की वस्तु नहीं मान सकते। हमारी मान्यताओं के अनुसार जो कुछ भी हमारे शास्त्रों और धर्म ग्रंथों में वर्णित है, वह न केवल सत्य है, वरन सशक्त है, इसलिए हम मिथक को पुराकथा कहते है।

डॉ. कोहली स्वयं ''मिथक'' या ''पुराकथा'' के संदर्भ में अपनी बात इस प्रकार प्रकट करते हैं–''मेरी दृष्टि में ''मिथक'' या ''पुराकथा'' में सबसे बड़ा गुण यही है कि उसे उलट–पुलट सकते हैं, इसके स्वरूप को बनाए रखते हुए। कहने का अभिप्राय यह है कि

ऐतिहासिक या पौराणिक उपन्यास भले ही अतीत से वास्ता रखता है, किन्तु उपन्यास कार की दृष्टि आधुनिक ही रहती है। इस प्रकार डॉ. नरेन्द्र कोहली के ने अपने ''दीक्षा' उपन्यास में ''पौराणिक राम कथा को एक नये दृष्टिकोण से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। डॉ. कौशल किशोर ने इस संदर्भ में कहा है–''राम की पुराणकथा को दोहराना उपन्यासकार (डॉ. कोहली) का लक्ष्य नहीं, उपलक्ष्य मात्र है।''

'दीक्षा' में नरेन्द्र कोहली जी ने पौराणिक कथावस्तु में तार्किक अर्थघटन का समावेष किया है। मिथक और साहित्य के बीच घनिष्ट संबंध तथा समाज का आइना होने के कारण साहित्य में मिथकीय प्रयोग सार्थक सिद्ध हुआ है और इसकी सार्थकता का प्रत्यक्ष प्रमाण नरेन्द्र कोहली जी का राम कथा मूलक उपन्यास 'दीक्षा' भी है जिसकी समीक्षा इस अध्याय में की जाएगी।

मिथक : अर्थ, परिभाषा और स्वरूप

अर्थ – हिन्दी साहित्य में मिथक शब्द से तात्पर्य 'मिथ' के अनुरूप ही अर्थ देने वाला है। इसलिए 'मिथी' शब्द का अर्थ जो भाव प्रकट करता है, उसी को मिथक के अर्थ की भी आवश्यकता माना जाता है।

वस्तुतः 'मिथ' का मूल अर्थ केवल कथा से है। बल्कि ग्रीक विद्वान व दार्शनिक अरस्तु ने भी मिथ का आधार तथा अर्थ कथातत्व, कथानक, कथाबन्ध, गल्पकथा आदि को भी स्वीकार किया है।

मिथक शब्द अंग्रेजी भाषा के ;डलजीद्ध शब्द का ही हिन्दी रूपान्तरण है अथवा पर्यायवाची है। ;डलजीद्ध शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के शब्द 'माइथॉस' से हुई है, जिसका अर्थ है आप्रवचन, मौखिक कथा अथवा अतर्क्य कथन अर्थात एक ऐसी कथा जिसे कहने और सुननेवाले इसे सृष्टि या ब्रह्माण्ड सम्बन्धी तथ्य समझते है 'मिथ' शब्द

का विपरीतार्थक शब्द 'लोगोस' माना गया है। जिसका अर्थ है 'तर्क'। मिथक संस्कृत का प्रमाणिक शब्द नहीं है।

संस्कृत के 'मिथ' शब्द के साथ कर्तावाचक 'क' प्रत्यय को जोड़ने से ही इसकी निर्मिति हुई है। 'संस्कृत' में मिथा शब्द के समीपवर्ती शब्दों के रूप में दो ही शब्दों का प्राधान्य रहा है। प्रथम है 'मिथस' अथवा 'मिथ' जिसका अर्थ है– परस्पर सम्मिलन तथा द्वितीय है 'मिथ्या' जिसका अर्थ है–'झूठ' तथा असत्य। यदि 'मिथक' का उद्भव 'मिथस' से माना जाए तो इस शब्द का अभिप्राय गप्प अथवा कपोल कथा से ही लगाया जा सकता है परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से आकलन करने पर ज्ञात होता है कि इन दोनों ही शब्दों से भले ही भिन्न–भिन्न अर्थ प्रकट होते हों लेकिन दोनों के उच्चारण में एक सा ही प्रयत्न लगता है कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों ही शब्दों में अर्थ साम्य की प्रधानता न होते हुए भी ध्वनि साम्य की प्रधानता है।

प्रारम्भ से ही हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने मिथकों को साधारणतया किंवदन्ती, दंतकथा, कथागाथ, निजंधरी, देवकथा, धर्मगाथा, गल्पकथा, पुराण, पुराकथा, पुराणकथा, पुराकृत, पुराख्यान आदि अनेकों ऐसे शब्दों से ही सम्बोधित किया है।

पुरावृत्त 'शब्द' के प्ररिपेक्ष्य में डॉ. राम अवध द्विवेदी ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि, ''पुरावृत्त शब्द का प्रयोक्ता स्वयं कहता है– हम नहीं कहा सकते कि पुरावृत्त मूलतः सम्पूर्ण शब्द के अर्थ का सम्पूर्ण अर्थबोध कराने में सक्षम है, किन्तु विषय निरूपण के लिए हम यह मान लेते हैं कि उसमें सभी अर्थों और संकेतों का संग्रह है जो आधुनिक काल में 'मिथ' से सम्बद्ध माने जाते है।''[1]

मिथकों के लिए प्रयोग होने वाला 'पुराशब्द के सन्दर्भ में जगदीश प्रसाद अपना मत प्रस्तुत करते है कि 'पुरा' के योग से बने शब्दों में अर्थ का फैलाव आवश्यकता से अधिक हो जाता है और

---

[1] डॉ0 राम अवध द्विवेदी एसाहित्य सिद्धान्त,

उनकी परीधि में लोककथा और लोकाख्यान भी आ जाते हैं जो 'मिथकों' से सम्बद्ध होने पर भी स्वयं मिथक नहीं कहे जा सकते। इन्ही सीमाओं को दिखाते हुए 'मिथक' का विकास कर दिया गया और अब हिन्दी में यह व्यापक रूप से स्वीकृत हो चुका है।''[1]

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी का काल बुद्धिवादी विचारकों का काल था, किन्तु इस काल में भी मिथक शब्द का तात्पर्य एक हास्य मात्र से था, क्योंकि मिथ को ऐसी कल्पना या ऐसी कथा माना जाता था, जिसका कोई ऐतिहासिक, वैज्ञानिक प्रामाणिक आधार न ही अर्थात् जो कि असत्य हो।

शनैः शनैः समय की आवश्यकतानुसार ही मिथकों को नवीन अर्थों में प्रस्तुत किया जाने लगा। उसकी व्याख्या नवीन अर्थों के साथ होने लगी। भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों ने मिथकों का अर्थ अपने–अपने अनुसार देना प्रारम्भ किया। इस क्षेत्र में प्रमुख विद्वानों द्वारा दिए गये अर्थ पर एक दृष्टि डालना उचित होगा।

'मिथ' शब्द की अर्थ व्याप्ति को देखते हुए रैनेवैलक का कहना है कि, ''इस शब्द का अर्थ सुनिश्चित कर पाना आसान नहीं है। यह एक अर्थ क्षेत्र की ओर इशारा करता है। हम सुनते हैं कि कवि और चिकार मिथ की तलाश करते रहते है। हमें प्रगति या लोकतंत्र के मिथ की बातें सुनने में आती है। हम सुनते हैं लेकिन साथ ही यह भी सुनने में आता है कि न तो मिथ की रचना की जा सकती है, न 'मिथ' में विश्वास किया जा सकता है और न ही किसी से इस पर विश्वास ही कराया जा सकता है।''[2]

डॉ. मिथक पर प्रस्तुत किए गए इस स्पष्टिकरण से यह ज्ञात होता है कि मिथकों का अस्तित्व सदैव से ही विद्यमान है, इन्हे मात्र कपोलकथा कहकर नकारा नहीं जा सकता है। लक्ष्मी नारायण वर्मा ने अपनी शोध पुस्तक पुराख्यान और कविता में मिथक का अर्थ, वाणी

[1]डॉ0 जगदीष प्रसाद श्रीवास्तव, मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, पृ0 सं–6

[2] Renu welleck & Austion Wrren ,Thery of Literative, Pg. No. 250.

का विषय उद्धत किया है, जिससे तात्पर्य है कि एक कहानी, एक आख्यान जो प्राचीन काल में सत्य माने जाते थे और जो कुछ रहस्यमय तथा गोपनीय अर्थ भी देते थे।''[1]

यहाँ पर मिथकों को एक कहानी, एक कथा से ही सम्बोधित किया गया है, लेकिन यह कथा केवल मनोरंजन के लिए न होकर ऐसे अर्थों को प्रस्तुत करती थी जो कि जीवन की रहस्यमयता को भी प्रकट करते थे तथा जिनकी सत्यता हमारे पुरातन काल में विद्यमान थी।इस परिप्रेक्ष्य में एडिथ हैमिल्टन कहते हैं कि, ''अधुनातन विचार के अनुसार धर्मगाधा का धर्म से कोई संबंध नहीं होता। वह प्रकृति की किसी बात की व्याख्या होती है। धर्मगाथा आरम्भकालीन विज्ञान है।''[2] मिथकों को धर्मगाथा कहकर सम्बोधित किया गया, इसलिए हेमिल्टन ने धर्मगाथा शब्द का प्रयोग करते हुए उसे धर्म से न जोड़कर प्राकृतिक तत्वों से जोड़ा है तथा उसे आरम्भिक विज्ञान की संख्या से अभिहित किया है। जिस समय से मिथकों को आरम्भकालीन दर्शन के रूप में देखा गया है जिस समय से मिथकों को आरम्भकालीन दर्शन के रूप में देखा गया है। दर्शन के क्षेत्र में सृष्टि व्यवस्था सम्बन्धी जो विचारण मिलती है, उसका मूल अनन्त काल से चली आ रही परम्पराओं से है। उनका कहना यह भी है कि प्रथम पौर्वात्य तत्व चिन्तन और सामान्यतः माहन पौर्वात्य पराभौतिक विचार सारणियों के उदय के पीछे यह तथ्य है कि लोग अनादि काल से यह विश्वास करते आये थे कि अपने को सृष्टि के आरम्भ का समसामयिक बना सकते थे।''[3] 'मिथकों के उद्भव तथा उत्पत्ति के संदर्भ में एक विचार यह भी दृष्टिगत होता है कि इनका सम्बन्ध आदिम मनुष्यों के प्रजनन कर्म तथा कृषिकर्म से है। इन कार्यों में जिन भयों और आशंकाओं का अनुभव उन्हे हुआ होगा, उन्ही के आधार पर वे मिथक रचते गये।

---

[1] डॉ0 लक्ष्मी नारायण वर्मा, पुराख्यान और कविता, पृष्ठ – 9
[2] डॉ0 जे पी श्रीवास्तव, मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, पृष्ठ – 8
[3] एम0 इलियादे, लॉ नैसेन्स, पृ0 491

कृषि और काम को नियमों को मूलभूत कथ्य मानने वालों में फ्रेजर का नाम सर्वोपरि है। इधर के विचाराकों में मेयर उल्लेखनीय है, जिन्होने प्रबल उक्तियों से इस विचार की पुष्टि की है'।[1]

प्रस्तुत विवेचना में मानव के काम और कर्म दोनों को ही मिथ का मूलभूत आधार माना गया है, क्योंकि प्राचीन काल से ही हमारे समाज में मनुष्य द्वारा किए गये अपने कर्म को ही महत्व दिया गया है और उस कर्म से तात्पर्य कृषि तथा खेती बाड़ी से संबंधित कर्म से ही है। उस समय व्यक्ति के मन में अपने इसी कर्म को सुरक्षित करने के लिए जो–जो तथ्य या जो–जो मान्यताएँ उसे उचित लगी वह उनका अनुसरण करता गया और यही बात काम अथवा उसके प्रजनन कर्म में भी लागू होती गई और मिथकों का जन्म और प्रगति होती चल गई।

इसी प्रकार मनुष्य ने प्रारम्भ में प्रति को ही अपने प्रत्येक कार्य का आधार बिंदु माना तथा उसी प्रकृति को अपनी आस्था तथा विश्वास के केन्द्र ही बनाया।

'सूर्य तथा अन्य ज्याति–पिण्डों (चन्द्रमा नक्षत्र आदि) के बाद ऋतु चक्र मिथकों का दूसरा प्रधान कथ्य है। यहाँ पर ज्ञातव्य है कि आदिम मनुष्यों ने मिथकों के रूप में रूपक नहीं गढ़े थे। उन्हे प्रकृति रूपों के मानवीकरण की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वे चेतना और व्यक्तित्व में विभेद नहीं कर सकते थे। उनके लिए सूर्य, चन्द्रमा, बदल आँधी, धरती आदि सभी उनके जैसे ही प्राणी थे।''[2]

मिथक के तात्पर्य को स्पष्टता देने के लिए पाण्डेय शशि भूषण शीतांशु अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हुए कहते है–''मिथक आत्मा की प्रकृति की उद्घाटिका एक चित्तपरक सत्ता है। यह अचेतन की सांस्कृतिक विवृत्ति है। यह अघटनीय की सम्भाव्यता, उत्पत्ति और नियान्त विषयक गुमान कथा और वर्तमान की संगति के नजरिए से

---

[1] V.K. Sarkar ,A Study of Meyer's Trilogy of Vegetation Powers and Festival's by – Indian Historical Quarterly December 1943.

[2] George W. cox,The Mytholody of Aryan Vations, Pg. No–21

अतीत की, की गई निर्वचन व्याख्या है। इसमें नाटकीयता, संघर्ष परक शक्ति क्षमता व विश्वसनीयता के तेवर मिलते है।''[1]

इस प्रकार किसी भी देश का सांस्कृतिक महत्व उसका जातीय अतीत मिथक साहित्य में सुरक्षित रहता है। हमारे देश की मिथकीय परम्परा का सार हमारे प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में सन्निहित है। इसमें निहित ज्ञान मिथक ज्ञान के कई वातायन खोलता है। वैसे भी ''वेद विद्या सृष्टि–विद्या का दूसरा नाम है।''[2]जिनके माध्यम से हमें अपनी सृष्टि का ज्ञान हो, उन्हें हम केवल गल्पकथा कहकर तो नहीं नकार सकते है।

प्रस्तुत समीक्षा के पश्चात् हम कह सकते हैं कि मिथक हमारे अतीत को जानने का मुख्य स्रोत है। यह मात्र हमारे अतीत को ही नहीं दर्शाता वरन् वर्तमान में उस अतीत को तर्कपूर्ण तथा न्याय संगत बनाने के लिए अतीत में हुई घटना को वर्णनात्मक तरीके से प्रस्तुत करता है।

परिभाषा

अब हम कुछ परिभाषाओं के आलोक में मिथकों के स्वरूप को और अधिक स्पष्टता से उजागर करने का प्रयास करेंगे।

मिथक का हिन्दी साहित्य में प्रयोग अधिक नवीनतम नहीं है। इस प्रयोग को पश्चिम से ही प्रेरित व प्रभावित माना गया है, क्योंकि वहाँ पर इसका प्रचार–प्रसार अधिक हुआ है। इसलिए पाश्चात्य विद्वानों ने धर्म, विज्ञान, समाज, दर्शन तथा साहित्य जैसे प्रत्येक विषयों तथा क्षेत्रों में मिथकों की भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ देने का प्रयास किया है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में पाश्चात्य विद्वानों में एक 'प्रेसकाट' ने अपनी पुस्तक 'प्रोयट्री एण्ड मिथ' में कविता और मिथक

---

[1] पाण्डेय शषिभूषण 'षीतांषु', मनोविज्ञान और मिथकीय आलोचना, पृ0–115

[2] वासुदेव शरण अग्रवाल, वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, पृ0–4

के व्यापक विमर्श प्रस्तुत किए। भारतीय साहित्य में मिथक का प्रयोग नवीन है। किन्तु इसका आधार हमारी पुराकथाएँ, देवकथाएँ तथा हमारे पौराणिक आख्यान हैं जो कि हमारी प्राचीन धरोहर है। किसी भी शब्द विशेष या किसी तथ्य को परिभाषित करने से तात्पर्य उसकी सम्पूर्ण विशेषता को सूक्ष्म रूप में समझाने का प्रयत्न किया गया है।

'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में कहा गया है कि मिथ (मिथक) आदिम संस्कृति का एक अनिवार्य और महत्वपूर्ण उपादान है, यह विश्वास को अभिव्यक्त विकसित और संहिताबद्ध करता है, यह नैतिकता की सुरक्षा करता है, उसे दृढ़ करता है, यह शास्त्र विधि धार्मिक अनुष्ठान की सक्षमता को प्रमाणित करते हुए मनुष्य के निर्देशन के लिए व्यवहारिक नियमों का निर्धारण करता है। इस प्रकार मिथक मानव सभ्यता के लिए अत्यावश्यक उपादान है। यह केवल निरर्थक कथा ही नहीं अपितु एक ठोस क्रिया व्यापार या कलात्मक बिम्ब–विधान की प्रस्तुति ही नहीं करता बल्कि आदिम विश्वासों और नैतिक विवेक का एक व्यावहारिक दस्तावेज है।''[1]

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में मिथक को परिभाषित करते हुए कहा है कि मिथक केवल दिमागी उपज या काल्पनिक चित्रों को व्यक्त करने का माध्यम नहीं है, वरन् यह तो मानव के विश्वास, उसकी नैतिकताओं का साक्षी है। मिथक तो धार्मिक अनुष्ठानों को प्रमाणित करते हुए मनुष्य के लिए व्यवहारिक नियमों का प्रतिपादन करता है।

इस प्रकार इस विश्वकोश के अनुसार मिथक मानवीय सभ्यता का अतिआवश्यक माध्यम है और यह सिर्फ कपोल–कथा न होकर जीवन के यथार्थ अथवा सत्यता का अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण तत्व है।

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ऐथिक्स में श्री ए.जी. गार्डनर ने मिथक पर विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि

---

[1] एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वॉल्यूम–15

मिथक प्रायः प्रत्यक्षतः या परोक्षतः कथा रूप में होता है। सामान्य कथा में यह इस रूप में अशंतः भिन्न होता है कि जिन मनुष्यों में यह कथा प्रथम बार प्रचारित होती है, वे इसे अवश्य ही तत्वतः सत्य मानते है।

इस प्रकार मिथक कथा नीति कथा या अन्योक्ति से उसी प्रकार भिन्न है, जिस प्रकार कहानी या कल्पित कथा से।''[1]

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ऐथिक्स में ए. जी. गार्डनर ने मिथक पर अपने विचार प्रस्तुत किए है, उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि मिथकीय कहानियों तथा कथाओं को यदि प्रथम बार सुना जाए तो हम कह सकते हैं कि मिथकीय कहानियों तथा कथाओं को यदि प्रथम बार सुना जाए तो उन पर विश्वास किया जा सकता है, लेकिन मिथकीय कथाएँ, नैतिक कथाओं से ठीक वैसे ही अलग है, जैसे कि कोई सच्ची कहानी किसी काल्पनिक से। कहने का तात्पर्य यह है कि मिथक हमारे सामने प्रस्तुत तो कथा कहानी के रूप में होते है, लेकिन इनका आधार हमारे विश्वास की परिणति ही होती है।

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल सांइसेज में कहा गया है कि मिथकीय लोक साहित्य के समान जातीय आकांक्षाओं (धारणाओं, आदर्शों) का सुस्पष्ट माध्यम है।

इसके अनुसार मिथक को लोक कथाओं के समान प्रधानतः औपन्यासिक कहानियाँ ही माना गया है, इन दोनों में मूलभूत अन्तर यह बताया गया है कि मिथक आलौकिक संसार की कहानियाँ है और इस प्रकार उनमें स्वभावतः ही धार्मिक तत्वों का समावेश हो जाता है। इस मत के आधार पर मिथक में दो तत्व ही प्रमुख रूप में शामिल होते हैं–

प्रथम उसका कथानक स्वरूप और दूसरा – उसका धार्मिक तथा लोकोत्तर वातावरण।''[1]

---

[1]ए0 जी0 गार्डनर, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, भाग–9, पृ0सं0–118

''कैसल्स एनसाइक्लोपीडिया ऑफ लिट्रेचर भी मिथक को लोक प्रचलित कथा स्वीकार करते हुए उसके धार्मिक तथा आलौकिक पक्ष की ओर ही संकेत करता है।''[2]

''चैम्बर्स कॉम्पैक्ट इंगलिश डिक्शनरी में मिथक को ईश्वर धर्म नायक या लोक प्रचलित आस्थावान व्यक्ति की परम्परागत् पुराकथा कहा गया है और माइथोलॉजी को मिथकों का समूह।''[3]

''स्टैन्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर माइथोलॉजी एण्ड लीजेण्ड में मिथक के धार्मिक पक्ष को महत्वपूर्ण उपादान स्वीकार करते हुए किसी देवी–देवता के इतिवृत्त से सम्बन्धित देव कथा की संज्ञा से अभिहित किया गया है।''[4]

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज, कैसल्स एनसाइक्लोपीडिया ऑफ लिट्रेचर, चैम्बर्स कौम्पैक्ट इंगलिश डिक्शनरी ऑफ फोकलोर माइथोलॉजी एण्ड लीजैण्ड। इन सभी विश्व कोषों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इन विश्वकोषों में मिथकों के धार्मिक तथा आलौकिक रूप को ही दर्शाया गया है, और कोई ऐसा व्यक्ति जिसकी इन कथाओं तथा ईश्वर में पूर्ण आस्था हो, उसकी एक प्राचीन गाथा कह कर सम्बोधित किया गया है।

''जर्मन विद्वान उसनेर गौटरमैन माइथोलॉजी इज द साइंस ऑफ मिथ कहते हुए मिथक को धार्मिक विचारों के विज्ञान से अभिहित करते हैं।''[5]

पश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते है कि मिथकों के माध्यम से हमें हमारी प्राकृतिक संपदा, ईश्वरीय शक्ति, आस्था और विश्वास ऐतिहासिक व पौराणिक

---

[1] एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोषल सांइसेज, भाग-II, पृ0सं0 22

[2] कैसल्स एनसाइक्लोपीडिया ऑफ लिट्रेचर, भाग-I

[3] चैम्बर्स कॉम्पैक्ट इंग्लिष डिक्षनरीःडब्ल्यू एण्ड आर चैम्बर्स लि0ए पृ0सं0–1954

[4] स्टैन्डर्ड डिक्षनरी ऑफ फोक्लोर माइथोलॉजी एण्ड लीजैण्ड भाग–2,पृ0–778

[5] डॉ0 अष्विनी पराषर, हिन्दी नयी कविता : मिथक काव्य, पृ0सं0–27

तथ्य तथा समाज में घटित होने वाले वैचारिक कर्म आदि का ज्ञान सुलभता से प्राप्त हो जाता है और इन सभी तथ्यों की जानकारी का मुख्य स्त्रोत इन्ही विद्वानों द्वारा प्रदान किया गया साहित्य है। पश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात् हिन्दी साहित्य में मिथकीय परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे–

हिन्दी साहित्य में मिथकों की परिभाषा बहुत कम क्षेत्रों में दृष्टव्य होती है।

सर्वप्रथम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने मिथकीय समीक्षा अथवा मिथकीय विवेचना प्रस्तुत की।आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा मिथकीय विवेचना के प्रस्तुतिकरण के पश्चात् ही हिन्दी साहित्य के लेखकों व कवियों ने मिथकों की तरफ ध्यान आकर्षित कर उनका प्रचार–प्रसार आरम्भ किया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी सर्वप्रथम मिथक की आधुनिक परिपेक्ष्य में व्याख्या करनेवाले साहित्यकार है, उन्होने लिखा है, ''रूपगत् सुन्दरता को माधुर्य (मिठास) और लावण्य (नमकीन) कहना बिलकुल झूठ है क्योंकि रूप न तो मीठा होता है और न ही नमकीन लेकिन फिर भी कहना पड़ता है, क्योंकि अंतर के भावों को बर्हिजगत की भाषा में व्यक्त करने का यही एकमात्र उपाय है। सच पूछिए तो यही एक प्रकार से मिथक है। मिथक शब्द वास्तव में भाषा का पूरक है। सारी भाषा इसके बल पर खड़ी है। आदि मानव के चित्र में संचित अनेक अनुभूतियाँ मिथक के रूप में व्यक्त होने के लिए व्याकुल रहती है। मिथक वस्तुतः उस सामूहिक मानव की भाव निर्मात्री शक्ति की अभिव्यक्ति है, जिसे कुछ मनोविज्ञानी आर्किटाइल इमेज (आद्यबिम्ब) कहकर संतोष कर लेते है।''[1]

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार– ''मिथक का अर्थ है ऐसी परम्परागत कथा जिसका सम्बन्ध अतिप्राकृत घटनाओं और भावों से होता है,

---

[1] हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथ माला, खण्ड–7 पृ0सं0– 85

मिथक मूलतः आदिम मानव के समष्टि मन की सृष्टि है, जिसमें चेतन की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधान्य रहता है।"[1] "मिथक रचनाकार की कल्पना का वह मूर्त रूप है जो उसके व्यापक क्षेत्र को व्यक्त करने के लिए अतीत के उपकरण के रूप में प्रयुक्त हुआ हो, जिसके लिए पुराकथा का आधार लिया गया है।"[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं में विद्वानों के अपने विचार व अपने तर्क है। हमारे विचार में मिथक एक ऐसा आख्यान है जो प्राचीन काल का सत्य है, रहस्यमय है, गोपनीय है और जिसमें इतिवृत्तात्मकता है। वे सभी पौराणिक चरित्र, प्रसंग एवं घटनाएँ जिनके भले ही कोई ऐतिहासिक प्रमाण न हों, लेकिन जो नए अर्थ से युक्त होकर काव्य में प्रयुक्त होते हैं, वे मिथक कहलाते हैं।

सामान्यतः ऐसी प्रचलित कथाएँ, घटनाएँ अथवा मान्यताएँ जिनकी ऐतिहासिक प्रमाणिकता संदिग्ध हो, किन्तु जो जन सामान्य के संस्कारों में एकदम प्रामाणिक रूप से विद्यमान हों, 'मिथक' कहलाते है। वे मात्र कपोल–कल्पना नहीं अपितु किसी भी सभ्यता की संस्कृति को समझने के सार्थक उपादान है। साहित्य में इनके प्रयोग से जीवंतता आती है। क्योंकि जन–जीवन एवं उसके विश्वास एवं आस्था से जुड़कर उसकी जातीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

स्वरूप

उपर्युक्त परिभाषाओं से मिथकों का स्वरूप स्वयं ही रूपायित हो जाता है, फिर भी मिथकों के स्वरूप को एक निश्चित अथवा सीमित परिभाषा में व्यक्त करना अत्यंत कठिन तथा असुविधाजनक है, क्योंकि समय–समय पर मिथकों ने आवश्यकतानुसार अपने स्वरूप को परिवर्तित किया है।"मिथ' शब्द का जन्म ऐतिहासिक दृष्टि से धार्मिक अनुष्ठान से हुआ है।"[3] अत्एव मिथक का धर्म के साथ अत्यन्त प्राचीन

---

[1] डॉ0 नगेन्द्र, मिथक और साहित्य, पृ0सं0–7
[2] डॉ0 विजयेन्द्र, स्नात्तक, विमर्श के क्षण, पृ0सं0– 17
[3] डॉ0 अष्विनी पराषर, हिन्दी नई कविता : मिथक काव्य, पृ0सं0 20

सम्बन्ध है। मैलिनोवोस्की के अनुसार भी, "धार्मिक मिथक ही आदिम जातियों में मिथक का वास्तविक रूप है।" प्रारम्भ में मिथकों का जो रूप रूपायित हुआ वह धार्मिक एवं प्राकृतिक ही था क्योंकि प्राचीन काल से ही मनुष्य ने अपने प्रत्येक कार्य का मूल धर्म और प्रकृति को ही स्वीकार किया है। इसलिए उसने सदैव ही धर्म और प्रकृति की सत्ता को पृथक–पृथक न देखकर एक साथ जोड़कर देखा है। प्राकृतिक शक्तियों का सम्बंध धर्म के साथ जोड़कर उसने स्वयं की रक्षा की चेष्टा की है। ताकि ये सभी प्राकृतिक शक्तियाँ अथवा सत्ताएँ उस मानव को सदैव, भविष्य में होने वाले किसी भी तरह के अमंगल से उसे बचाती रहे, तथा हमेषा उसकी रक्षा करें, इसी से उसके मन में एक भय मिश्रित श्रद्धा– भाव का उदय हुआ। यह हमारे प्राचीन गंथो में भी उद्घाटित हुआ है कि बिना भय के मनुष्य ईश्वर की आराधना नहीं कर सकता है और न ही उसमें आसक्त हो सकता है। इसका एक सषक्त उदाहरण में रामचरितमानस के सुन्दर काण्ड में देखने को मिलता है। जब श्री राम चन्द्र जी लंका पर युद्ध की चढ़ायी करने के लिए अनुनय–विनय के साथ समुद्र से मार्ग माँग रहे थे, उनको समुद्र ने तीन दिन तक पूजा अराधना के उपरान्त भी लंका जाने के लिए मार्ग नहीं दिया, तब श्री राम क्रोध से बोले–

"विनय न मानत जलधि तब,
गये तीन दिन बीत।
बोले राम सकोप तब,
भय बिनु होय न प्रीति।।"[1]

इसी प्रकार मनुष्य ने भी जल, सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्रमा इत्यादि सभी प्रकार की प्राकृतिक सत्ताओं की कल्पना, अग्निदेव, सूर्यदेव, वरूणदेव, सोमदेव तथा विश्वदेव आदि के रूप में स्वीकार कर ली इनका मूल आधार मिथकों में ही विद्यमान है। यहाँ पर मिथक का स्वरूप धार्मिकता से जुड़ा हुआ है, अतः ऐसे स्थलों पर मिथकों का प्राकृतिक स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। मिथकों के प्राकृतिक स्वरुप

[1] गोस्वामी तुलसीदास, श्री राम चरित मानस,किष्किन्धा काण्ड, दोहा–57, पृ0सं0–85

का प्रमुख उदाहरण 'नरेश मेहता' कृत'महाप्रस्थान' है जिसमें लेखक ने महाभारत का पौराणिक व धार्मिक आधार लिया है, किन्तु पौराणिक आधार के साथ–साथ इसमें प्रकृति का भी उल्लेख हुआ है।

''महाप्रस्थानिक पर्व में पाण्डव वंशियों का श्राद्ध करके सभी प्रजाजनों की अनुमति लेकर द्रौपदी सहित अपने महाप्रस्थान पथ पर हिमालय की ओर बढ़ने लगते है। यात्रा पर्व में युधिष्ठिर हिमालय की प्राकृतिक छटा और शांत वातावरण में विचरते हुए उच्च शिखरों पर पहुँच जाते है।''[1]

यहाँ पर नरेष मेहता जी को प्रकृति का आलौकिक व असीम सौन्दर्य दिखाई देता है, चारों ओर बर्फ से ढँकी हुई ऊँची–ऊँची पहाडियाँ, शिव के समान स्वच्छ, निर्मल व तेजवान नजर आती है। उन्हे इस प्राकृतिक सौन्दर्य में कही हंसो द्वारा बोली जाने वाली ध्वनियाँ सुनाई देती हैं तो कहीं सूर्य की प्रिया धूप के यान में बैठकर मानस जल पीने आती है तथा इसके साथ–साथ तेज चलने वाली ठंडी हवाएँ ऐसी लगती है, जैसे कि कोई गुफा में बैठकर हिमालय रूपी ग्रंथ का पाठ कर रहा हो।

''यहीं कही, कहते हैं हंस–वाणियाँ सुन पड़ती हैं,
यहीं कही तो धूप यान में
सुर्य प्रियायें मानस जल पीने आती है।
कानों में बजती इन शीत हवाओं में
क्यों लगता जैसे कोई किसी कन्दरा में बैठा
हिमालय धर्म ग्रंथ का पाठ कर रहा।''[2]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि मिथकों का प्रयोग प्रकृति में भी अधिकाधिक रूप में होता है। ऐसे स्थलों पर प्राकृतिक स्वरूप स्पष्टता के साथ रूपायित होता है।

---

[1] डॉ0 अष्विनी पराषर, हिन्दी नयी कविता : मिथक काव्य, पृ0सं0–109
[2] नरेष मेहता, महा प्रस्थान यात्रा पर्व, पृ0सं0–32

मिथकों का जो स्वरूप सर्वाधिक दृष्टिगत् होता है वह है मिथकों का वैज्ञानिक स्वरूप, क्योंकि समय–समय पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी मिथकों को प्रभावित करते रहते है। मिथकों को वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करते हुए समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तभी तो जीवन का प्रत्येक क्रिया कलाप मिथक की सीमा में आता है, मिथक के वैज्ञानिक स्वरूप का उदाहरण डॉ. शरण बिहारी गोस्वामी, की रचना 'पाषाणी' में दृष्टिगत् होता है।

''पाषाणी' में डॉ॰ शरण बिहारी गोस्वामी ने पत्थर की शिला बनी तथा राम द्वारा उद्धार की गई अहल्या को नई अर्थवत्ता प्रदान की है।

अहल्या इंद्र से संसर्ग के बाद गौतम से शापवश अस्थि चर्म मय कंकाल रूप हो गई थी, चेतना मूढ़ हो गई थी। अहल्या छली गई थी, जिसे राम के माध्यम से निर्दोष सिद्ध करते हुए कवि ने अहिल्योद्धार प्रसंग को एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि सम्मत उपचार के रूप में चिंत्रित किया है। इस प्रकार 'पाषाणी' में गोस्वामी जी नारियों को भोक्ता, चेतन और मातृमर्ति के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए उसे मात्र भोग्या। उपेक्षित या दलिता ही नहीं रहने देते एक विकासक्रय देते हुए नई आधुनिक, समानता, की भावना से अनुप्रेरित सही सामाजिक नारी की भूमिका का भी निर्वाह करती है।''[1]

मिथकों के वैज्ञानिक स्वरूप का स्पष्टीकरण इस कथा के माध्यम से किया जा सकता है कि जिस तरह अहल्या–उद्धार की कथा में पत्थर की शीला को स्पर्श मात्र से स्त्री रूप प्रदान किया गया है तथा उसकी सशरीर स्वर्ग प्राप्ति के समान था। इस कथा के माध्यम से लेखक ने मानव मनोविज्ञान को मिथकीय आधार प्रदान करके एक नवीन वैज्ञानिक दृष्टि के साथ आज के युग के समक्ष प्रस्तुत किया है। मिथकों के उपयुक्त दोनों स्वरूपों के पश्चात् कुछ विद्वानों ने मिथकों के घटना प्रधान स्वरूप को भी प्रमुखता प्रदान की

[1] डॉ0 अष्विनी पराषर, हिन्दी नई कविताः मिथक काव्य, पृ0सं0 96–97

है। यह घटना अतीत, वर्तमान या भविष्य में कभी–भी तथा कहीं भी घटित हो सकती है, तथा सर्वप्रथम यह घटना मस्तिष्क के उत्पन्न होते हुए, शब्दों में, तत्पश्चात् कार्य रूप में अभिव्यक्ति पाती है।घटना प्रधान मिथक का प्रमुख उदाहरण 'कृष्ण नन्दन पियूष' द्वारा रचित 'योगनिद्र' मे प्राप्त होता है। इससे लेखक ने महाभारत मे मौसल पर्व में'कृष्णा' के 'जरा' नामक याघ्र से मारे जाने की घटना का उल्लेख किया है। इसकी कथा इस प्रकार से है।

''श्री कृष्ण ने दुर्वासा की जूठी खीर को अपने सब अंगों मे लपेट लिया था पर भूल से अपने पैरों के तलवों में नहीं लपेटा था। दुर्वासा के वरदान से उनका सम्पूर्ण शरीर वज्र हो गया। केवल तलुवे कमजोर रह गये। अपने सम्पूर्ण दायित्वों से निवृत्त होकर कृष्ण महायोग का आश्रय ले वन में धरती पर लटे हुए थे, तभी 'जरा' नामक व्याघ्र मृगों के आखेट के लिए उधर से गुजरा। मृग की भूल में उसने कृष्ण के मोहक पैरों को लक्ष्य कर बाण चला दिया। कृष्ण मृत्यु के इस निमित्त को पाकर बैकुण्ठ सिधार गये।''[1]

यहाँ पौराणिक मिथकीय घटना को आधार बनाकर इंगित किया गया है कि एक साधारण सी घटना कैसे मनुष्य तथा किसी प्राणी के जीवन को प्रभावित करती है। जिस प्रकार मृग की भूल से श्री कृष्ण व्याघ्र द्वारा वार करने से बैकुण्ठ के निमित्त को प्राप्त कर गये। ठीक उसी प्रकार आज भी मानव जीवन में छोटी–छोटी व बड़ी से बड़ी ऐसी कई घटनाएँ हो जाती है, जिनके कारण मानव जीवन पूर्णतः परिवर्तित हो जाता है। घटना प्रधान मिथकों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य वामन जहाँ घटना श्लेष रूप अर्थ, गुण स्वीकारते है। जहाँ एक के बाद एक घटनाओं का क्रिया व्यापार, क्रम कौटिल्यादि के आधार पर होता है वहाँ मिथकों का घटना प्रधान रूप कुछ साम्य रखता है। फर्क मिथकीय घटना, पात्र से और युगानुरूप युगबोध का है।

---

[1] डॉ0 अश्विनी पराषर, हिन्दी नई कविताः मिथक काव्य, पृ0सं0 113

इन सभी प्रकारों अथवा स्वरूपों से अलग कुछ विद्वानों ने मिथकों का रूप ज्ञान के एक प्रकार को स्वीकार किया है, जो कि हमारी बौद्धिमता को प्रदर्शित करता है तथा अपनी बुद्धि व ज्ञान के अनुरूप ही अपने अंतः संघर्षों का निराकरण मनुष्य भली प्रकार कर पाता है। मिथक के इस रूप का उदाहरण हम जगदीश चतुर्वेदी द्वारा रचित 'सूर्य पुत्र' के माध्यम से प्रदर्शित कर सकते है।

"जगदीश चतुर्वेदी ने सूर्यपुत्र के माध्यम से, मानवीय संवेदना, भोगी हुई कटुता और धुँधलाते हुए अस्तित्व की अभिव्यक्ति दी है सूर्यपुत्र में कर्ण का निरूपण एक अन्तः संघर्ष को भोगने वाले निरासक्त योद्धा के रूप में करते हुए विभिन्न राजनैतिक ऊहापोहों के बीच पिसते हुए आदमी की बेचारगी का ही चित्रण किया है। आज विश्व में विनाश की जो अविराम प्रक्रिया चल रही है, कवि ने उसे विभिषिका से संत्रस्त मानव की भयावह तथा कँपा देने वाली स्थिति को, कर्ण के मिथक का प्रयोग करते हुए रूपायित किया है, जो कृति में एक बौद्धिक समीकरण के रूप में उपस्थित हुआ है।"[1]

कर्ण ने अपने जीवन में आने वाले सभी प्रकार के संघर्षों को अपनी बौद्धिकता के साथ स्वीकार किया। उन्हे आजीवन 'सूर्यपुत्र' के स्थान पर 'सूतपुत्र' के नाम से ही पुकारा गया किन्तु उन्होने कभी इस बात का विरोध नहीं किया। हालांकि इसका क्षोभ उन्हे सर्वथा सालता रहा। महाभारत के युद्ध में भी उन्होने कई स्थानों पर अपने ज्ञान का परिचय दिया। यथा माता कुन्ती द्वारा अर्जुन की रक्षा का वचन माँगने पर वह ममता के प्रति समर्पित होकर केवल अर्जुन को छोड़कर सभी पाण्डव भाइयों की रक्षा का दान देकर उन्हे आश्वस्त कर वापस जाने को कहते है और इस तरह विवकेशील बौद्धिक ज्ञान से माँ का आना भी व्यर्थ नहीं करते और अपनी बात भी रख देते हैं।

पात्रों के आत्म मन्थन में भी मिथकों का एक बौद्धिक रूप उजागर होता है क्योकि मानसिक व आन्तरिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति

---

[1] डॉ0 अश्विन पराषर, हिन्दी नई कविताः मिथक काव्य, पृ0सं0– 93

विचार शील धारणाओं से ही सम्पन्न होती है। नरेश मेहता कृत संशय की एक रात में यह द्वन्द्व बड़ी कुशलता से उजागर हुआ है जो राम की उचित, अनुचित का बोध कराने वाली विवकेशील बुद्धि या ज्ञान को ही प्रकारान्तर से प्रकट करता है। इससे लेखक ने श्री राम के मन तथा मस्तिष्क में उठने वाले अनेकों प्रश्नों तथा उनके हृदय की अर्न्तद्वन्द्व की स्थिति को प्रकाशित किया है।

''इतिहास के हाथों
बाण बनने से अधिक अच्छा है
स्वयं हम
अँधेरों में यात्रा करते हुए खो जाएँ।''

नरेश मेहता ने राम के इतिहास मुक्त स्वरूप को व्यक्त किया है। न तो वह इतिहास के निर्माणकर्ता बनना चाहते हैं और न ही इतिनिमित्त बनकर युद्ध में होने वाले रक्तपात का सम्पूर्ण श्रेय अपने ऊपर लेना चाहते है। वरन इन सबसे बेहतर वह स्वयं अंधेरों में खो जाने की स्थिति को समझते है।

पाठकों के संदर्भ में यह बौद्धिकता इस रूप में देखी जा सकती है कि वे इन मिथकों के सकारात्मक रूप को स्वीकारते है या नकारात्मक रूप को। ''आज व्यक्ति प्रत्येक सत्य को चाहे वह धार्मिक मान्यता के रूप में प्रतिष्ठित रहा हो या चाहे परम्परा में कितना पूज्य ही क्यों न रहा, अपनी बुद्धि की तुला पर खरा पाकर ही ग्रहण करता है।''[1]

मिथकों के स्वरूप का एक विधायक अंग उसकी प्रतीकात्मकता भी है। मिथकों को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करने की परम्परा हमारे देश में प्राचीन काल से ही विद्यमान है। क्योंकि दोनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है मिथकों का प्रतीकात्मक प्रयोग हमारी प्रकृति है। जैसे दुष्यंत कुमार का 'एक कण्ठ विषपायी' जर्जर होती रूढ़ियों और चरमराकर टूटती हुई परम्पराओं के शव से चिपटे

[1] डॉ0 पुष्पपाल सिंह, काव्य मिथक, पृ0सं0– 48

हुए व्यक्तियों के सन्दर्भ में प्रतीकात्मक रूप से आधुनिकता बोध को प्रकाशित करता हुआ तथा नये मूल्यों का संकेत करता हुआ काव्य नाटक है।''[1]

इस काव्य के सम्बन्ध में स्वयं रचनाकर ने लिखा है कि– ''उसी दिन मुझे लगा कि जर्जर रूढ़ियों और परम्परा के शव से चिपटे हुए लोगों के सन्दर्भ में प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक पृष्ठ भूमि और नये मूल्यों को सांकेतित करने के लिए इस कथा में पर्याप्त अवकाश है।''[2]

'राम की शक्तिपूजा' में राम, सीता, लक्ष्मण क्रमशः जननेता, अपहृत स्वतंत्रता एवं सहयोगी के प्रतीक के रूप में सुन्दर योजना हुयी है और भी अनेक मिथकीय कृतियाँ भी अपनी प्रतीकात्मकता से प्रभावशाली हुयी है। ऐसे स्थलों पर उनका प्रतीकात्मक स्वरूप उजागर हुआ है।

नरेश मेहता ने राम की सामूहिक दायित्व बोध की भावना को भी उजागर किया है। वह प्रजा सुख के लिए तथा प्राणी–मात्र के मंगल कामना के लिए युद्ध नहीं करना चाहते है। वह स्वयं कहते हैं कि– ''मैं केवल युद्ध को बचाना चाहता हूँ बन्धु !
मानव में श्रेष्ठ जो विराजा है
उसको ही
हाँ, उसको ही जागना चाहता रहा हुँ बन्धु !
क्या यह सम्भव है ?
क्या यह नहीं है ?''[3]

राम के माध्यम से शान्ति की कामना बौद्धिक मन को अभिप्रेत है। कुछ विद्वानों ने तो मिथकों के स्वरूप को प्रकृति, धर्म, ज्ञान, विज्ञान व प्रतीक न मानते हुए उसे समाज से ही सम्बद्ध माना है। उनके अनुसार मिथक सामाजिक परिस्थितियों से ज्यादा प्रभावित होते हैं, क्योंकि समाज में होने वाले परिवर्तनों से नित नवीन मिथकों का

---

[1] डॉ0 अश्विनी पराषर, हिन्दी नयी कविताः मिथक काव्य, पृ0सं0– 81
[2] डॉ0 दुष्यन्त कुमार, एक कण्ठ विषपायी, पृ0सं0– 5
[3] श्री नरेष मेहता, संषय की एक रात, पृ0सं0– 19

जन्म होता रहता है। यह मिथक धार्मिक, मानसिक किसी भी क्षेत्र के हो सकते है। क्योंकि मिथक का हर क्षेत्र समाज से ही उत्पन्न होता है, तथा समाज को ही प्रभावित करता है। सामाजिक मिथकों की परिधि में हम स्त्रियों की स्थिति को वर्णित कर सकते है। ऐसा इसलिए कि प्राचीन काल से ही स्त्रियों को निम्न स्तर का समझा जाता था। उन्हे स्वयं की इच्छाओं को व्यक्त करने का, ज्ञान अर्जित करने का, यहाँ तक कि समानता का भी अधिकार प्राप्त नहीं था। क्या यह एक प्रकार का मिथक नहीं है कि, ''स्त्री यदि ज्ञानवान हो जाएगी, तो वह अशिष्ट हो जाएगी तथा सभी कार्यों से विमुख हो जाएगी।'' ''गोस्वामी तुलसीदास'' जी भी नारी की ही प्रेरणा से महाकवि बने तथा उन्होने 'रामचरित मानस' जैसे महाकाव्य की रचना की जो कि कालान्तर तक प्रसिद्धि को प्राप्त होती रहेगी। किन्तु इसके साथ ही उन्होने 'रामचरितमानस' के 'सुन्दरकाण्ड' में स्त्री की तुलना शूद्र, पशु तथा ढोल के साथ की है तथा उसे दण्ड और ताड़न का अधिकारी बताया है।

''ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी
सकल ताड़न के अधिकारी।''[1]

क्या यह सही है? और यदि सही नहीं है तो मात्र एक मिथक है? इससे हमें ज्ञात होता है कि समाज मिथकों से भरा पड़ा है बल्कि यदि हम कहें कि समाज ही मिथकों की पृष्ठभूमि है तो यह कोई अतिश्योक्ति भी नहीं होगी।उपर्युक्त किये गये अध्ययन से यह स्पष्टीकरण हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है कि मिथकों को एक निष्चित व निर्धारित स्वरूप में बाँधना सम्भव नहीं है। यह युग व काल की आवश्यकतानुसार ही स्वयं के रूप को परिवर्तित करते रहते हैं। मिथक समाज से प्रारम्भ होकर हमारे धर्म से हमे परिचित कराते रहते हैं। हमारी प्राकृतिक आस्थाओं को जीवित रखते हैं तथा हमारे वैज्ञानिक तथा बौद्धिक दृष्टिकोण को भी निर्धारित करते हैं

---

[1] गोस्वामी तुलसीदास,रामचरित मानस,सुन्दर काण्ड (किष्किन्धा काण्ड)पृ0–87

'दीक्षा' में मिथकीय चेतना

आधुनिक काल में गद्य का आर्विभाव हुआ। गद्य के विकास के साथ अनेक गद्य विधाएँ भी सामने आयीं। उपन्यास भी उनमें से एक है। आधुनिक काल के पूर्व रामकथा हमें अधिकांशतः पद्य में ही उपलब्ध होती है, परन्तु आधुनिक काल में गद्य के आर्विभाव के कारण और उपन्यास के उद्‌भव के कारण अब रामकथा उपन्यासों में भी मिलने लगी है। यह और बात है कि उपन्यास के यथार्थ के **तकाजे** के कारण अब उसमें आधुनिक–तार्किक अर्थघटन का समावेश होने लगा है। इसी रामकथा की उपन्यास परम्परा में डॉ. नरेन्द्र कोहली जी का नाम सर्वविदित है। रामायण पर आधारित उपन्यासमाला का प्रथम उपन्यास ''दीक्षा'' है। ''दीक्षा'' लिखने से पूर्व और ''आतंक'' लिखने के बाद के दिनों में तीन घटनाएँ हुई थी। जिन्होने डॉ. नरेन्द्र कोहली के मानसिक चिंतन को झकझोर दिया था। पहली घटना उनके कॉलेज में घटित होती है, जिसमें कुछ गुण्डेनुमा लड़के ढाई–तीन सौ विद्यार्थियों की भीड़ में एक लड़के पर चाकू के तीन वार करके भाग जाते है। संयोग से लेखक भी वहाँ उपस्थित थे। मारने वाले भाग गये। घायल लड़के को अस्पताल पहुँचाया गया। किन्तु तीन दिन के बाद भी पुलिस की ओर से कोई अधिकारी इस घटना की छानबीन के लिए नहीं आया पूछताछ करने पर पता चला कि आक्रमण की योजना पहले से बन गई थी, पुलिस थाने में सूचना भी दे दी गई थी। दूसरी घटना बिहार के एक गाँव की थी जिसमें कुछ तथा कथित कुलीन राजपूतों ने हरिजन कन्याओं से आत्म समर्पण चाहा और उनके द्वारा तिरस्कृत होने पर उन लोगों ने उनकी झोपड़ियों में आग लगा दी, पुरुषों को जीवित जला दिया, स्त्रियों का शील भंग किया और उन्ही की जलती हुई झोंपड़ियों की आग में तपाकर लौह–शलाकाओं से उन हरिजन स्त्रियों के गुप्तांगों पर उनकी जाति चिह्नित कर दी गयी थी। यह वही बिहार था, जहाँ विश्वामित्र राम को अपने आश्रम में यज्ञ–रक्षा हेतु लाये थे, यह वही बिहार था जहाँ सीरध्वज जनक का

राज्य था। और तीसरी घटना बांग्लादेश के युद्ध की थी। बांग्लादेश युद्ध में एक और राक्षसी क्रूरताएँ और अत्याचार थे, दूसरी और बुद्धिजीवियों का अत्याचार विरोध और सत्य के पक्ष में उनका बलिदान। लेखक के मन में इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में रामकथा निर्मित होने लगी। इस संदर्भ में डॉ. कोहली कहते हैं–''सामान्यतः हम प्रत्येक युद्ध को महभारत के साथ जोड़ने के अभ्यस्त है, किन्तु बांग्लादेश का युद्ध रामायण के ही निकट है। बांग्लादेश में अपने देश का हित सोचने वाले बुद्धिजीवी अमरीका की आँखों में **काटे**–सरीखे खटक रहे थे। क्यों? क्योंकि पाकिस्तानी अत्याचारी अमरीका के भाईबंधु थे और बांग्लादेश के बुद्धिजीवी उनके मार्ग में बाधा थे। मेरे मन में स्पष्ट होने लगा कि बनवासी ऋषि किस प्रकार लंका में बैठे रावण के मार्ग की बाधा थे। यह पहला युद्ध था। जिसमें भारत की सेना किसी अन्य देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने गई थी और विजय प्राप्त कर शासन का अधिकार उस देश की जनता के हाथों में दे आयी थी–जैसे राम किष्किंधा को सुग्रीव के हाथों और लंका को विभीषण के हाथों में सौंप आये थे। तब मेरे मन में बांग्लादेश के बुद्धिजीवियों के साथ ''आतंक'' का डॉ. कपिला जुड़ गया और उन सबका स्वरूप विश्वामित्र जैसा हो गया। विश्वामित्र जहाँ–कहीं होगा, वह मानव का हित सोचेगा, अतः अनायास या सायास, पूँजी के बल पर शोषण करने वाले सोने की लंका के स्वामी का शत्रु हो जाएगा। रावण विश्वामित्र पर प्रहार करेगा ही, और विश्वामित्र को अपने पक्ष में लड़ने के लिए राम को 'दीक्षित' करना ही होगा।''[1]

इस प्रकार रामायण की कथा लेखक के मन में अंकुराने लगी। उनका अपना ही कॉलेज सिद्धाश्रम में बदल गया और उनका वह छात्र, वह घायल लड़का सुकंठ बनकर लेखक की कल्पना के समाने मानो लेट गया। लेखक स्वयं विश्वामित्र के रूप में कि कॉलेज

---

[1] सं0 ईषान मेहताए नरेन्द्र कोहली ने कहा, पृ0 सं0– 38

का यह सारावर्ग–छात्र–छात्राएँ–कॉलेज के अध्यापकों के संरक्षण में हैं, लेकिन ये अध्यापक क्या कर पाते हैं? विश्वामित्र ने शासकीय सहायता के लिए अजानुबाहु को भेजा, तो वह बहुलाश्व और उसके पुत्र देवप्रिय की घटना की सूचना ले आये। बिहार के उस गाँव की हरिजन कन्याएँ, उनके घर के पुरुष, ये सब मानों लेखक के सामने उपस्थित हो गये। और तब विश्वामित्र ने यह सब सोचा, जो लेखक ने अपने परिवेश में देखा, पढा, सुना और समझा था। इस प्रकार 'दीक्षा' की रचना हुई।

'दीक्षा' लिखने से पहले लेखक की जो मन स्थिति थी उसका वर्णन स्वयं लेखक इस प्रकार दे रहे है–''दीक्षा' लिखते हुए मेरे मन में अपना वर्तमान था, अपना परिवेश था, अपनी मान्यताएँ थीं, उसके चमत्कार व अलौकिकता थीं और मैं उपन्यास लिख रहा था––उपन्यास, अर्थात् अपने युग की समस्याओं को अपने युग की कथा के माध्यम से अपने युग के लोगों तक अपनी टिप्पणियों के साथ पहुँचाने का प्रयत्न। उस कथा की घटनाओं तथा चरित्रों को समकालीन मनोविज्ञान, चिंतन व संस्कृति में ढालना था।''[1]

इस प्रकार कुछेक वर्तमान सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों से उद्वेलित होकर लेखक ने रामायण को लेकर उपन्यास माला लिखने का विचार किया और शुभारंभ ''दीक्षा'' से किया।

''दीक्षा'' डॉ. नरेन्द्र कोहली का पहला पौराणिक उपन्यास है। उसकी अभूतपूर्व सफलता से प्रेरित होकर बाद में उन्होने रामकथा को आगे बढ़ाया। रामकथा लिखना उनके लिए चुनौतीपूर्ण कार्य था। ये चुनौती रामकथा के भीतर भी थीं और बाहर भी थीं। भीतर की चुनौतियों में रामकथा का पौराणिक रूप, उसके मिथक, उसकी चमत्कार–पूर्ण घटनाएँ–जिन पर भक्तों ओर श्रद्धालुओं को तो विश्वास बैठ सकता है, लेकिन वैज्ञानिक सोच रखने वाला व्यक्ति उन पर भला

---

[1] सं0 ईषान मेहताए नरेन्द्र कोहली में कहा, पृ0सं0–29

क्यों विश्वास करेगा और बाहर की चुनौतियों में सबसे बड़ी चुनौती तो यह थी कि जिस कथा को देश के बुद्धिजीवियों द्वारा पुरानी, पिछड़ी हुई, सामन्ती मूल्यों की पोषक तथा अमानवीय घटिया मूल्यों की प्रतिष्ठापक मान लिया गया है, जिस पर लिखना न आधुनिक माना जाएगा, न फैशनेबुल। ऐसी स्थिति में कुछ लोगों के लिए वे हास्यास्पद भी बन सकते थे। राम के उन पक्षों पर तो लिख सकते है। जिन पर प्रहार किया जा सकता है, पर लाख प्रगतिशील होते हुए भी लेखक के अपने कुछ संस्कार ऐसे थे जिनके रहते वे राम पर प्रहारात्मक प्रकार का साहित्य तो वे लिख की नहीं सकते थे। उनके यहाँ सुंदर कांड और रामचरितमानस का पाठ भी होता था। लेखक राम को पीड़ित मानवता का पक्षधर मानते थे और उनके उसी रूप को चित्रित करना चाहते थे, यही उनके लिए सबसे बडी चुनौती थी। ''कृति'' की गोष्ठी में जब ''दीक्षा' के कुछ अंश सुनाये गये तो कई तरह की आपत्तियाँ उठाई गई। कुछ मित्रों ने तो यहाँ तक कह डाला कि ''इन तिलों में तेल नहीं'' लेकिन लेखक को इन तिलों में भरपूर धाराप्रवाह तेल दिख रहा था।

रामायण की रामकथा अयोध्या से शुरू होती है, जबकि प्रस्तुत उपन्यास में विश्वामित्र के आश्रम से उसका प्रारम्भ होता है। कथा भी विश्वामित्र के इर्द–गिर्द की चक्कर काटती है। विश्वामित्र के पास एक लम्बी कहानी है, जो रामकथा की नूतन व्याख्या करती है। यह व्याख्या इतनी सटीक है कि इसमें कथारस की रक्षा तो होती ही है, उसमें बुद्धि, तर्क, विज्ञान, विवेक और घटनाओं की संगति भी है। इसमें लेखक ने पाकिस्तानी सेनाओं के नृशंस अत्याचारों से पीड़ित निरीह जनता की पीड़ा को राम–रावण के युद्ध के संदर्भ में देखने और दिखाने का संनिष्ठ प्रयास किया है। उपन्यास का प्रारम्भ विश्वामित्र के सिद्धाश्रम से शुरू होता है। राक्षसों ने फिर आतंक मचाया है। उनका एक शिष्य नक्षत्र बुरी तरह से मारा गया है। यथा–''समाचार सुना और विश्वामित्र एकदम क्षुब्ध हो उठे। उनकी

आँखे, ललाट, कपोल–क्षोभ से लाल हो गये। क्षण–भर समाचार लाने वाले शिष्य पुनर्वसु को बेध्यान घूरते रहे और सहसा उनके नेत्र झुककर पृथ्वी पर टिक गये। अस्फुट से स्वर में उन्होने कहा, ''असहय !''[1]

यहाँ विश्वामित्र की चिंता समष्टिगत है। वे त्रस्त, आतंकित मानवता को क्रूर–राक्षसी शक्तियों से बचाना चाहते है। दूसरे शब्दों में कहें तो लेखक के भीतर का बुद्धिजीवी यहाँ विश्वामित्र हो गया है। वस्तुतः पौराणिक ग्रन्थों की मिथक कथाएँ इस तरह की होती है कि मिथक कथाएँ इस तरह की होती है कि प्रत्येक युग का चिंतक उसकी व्यास्था अपने ढंग से करता है। यही कारण है कि उनका मिथकत्व कभी चूकता नहीं है। स्वयं डॉ. नरेन्द्र कोहली इस संदर्भ में कहते है–''पुराणों और पौराणिक ग्रंथों में केवल इस जीवन को और अपने काल को ही सृष्टि की सीमा नहीं माना गया है। उनके सम्मुख एक विराट सृष्टि है। असीम देश और काल है। इस जीवन के साथ ही सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता। अनन्त लोक है और काल भी अनन्त है उसको समग्रता में देखने से ही जीवन की परख होती है।''[2]

डॉ. नेरन्द्र कोहली ने भी प्रचलित परमपरागत रामकथा के कई मिथकों को तोड़ते हुए उसे एक नया रूप दिया है। रामचरितमानस में तुलसीदास ने लिखा है कि गुरू–गृह पढ़ने जाकर राम ने थो समय में सारी विधाओं को आत्मसात कर लिया था। फिर विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए उनको माँग कर ले गये थे। इस प्रकार कुलगुरू वशिष्ठ की परम्परगत शिक्षा में जो कभी रह गयी थी उसकी पूर्ति विश्वामित्र करते है। वह ब्राह्मण गुरू की शिक्षा थी, यह क्षत्रिय राजर्षि गुरू की दीक्षा थी, क्रान्तिकारी दीक्षा, जीवन को उसकी समग्रता में जीने की दीक्षा, और इसीलिए इस उपन्यास का ''दीक्षा'' शीर्षक सार्थक हुआ है। वशिष्ठ प्राचीनता और पुरातनता को भी इन्ही प्रयोगों पर परीक्षित करते रहना चाहिए, यह विश्वामित्र का

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –1
[2] डॉ0 विवेकीराय, नरेन्द्र कोहली : अप्रतिम कथायात्री, पृ0सं0– 83

पक्ष था। यह उस नयी दीक्षा का प्रभाव था कि कई स्थानों पर राम परम्परगत कुल मर्यादा की लीक को छोड़ते हुए दृष्टिगोचर होते है। समष्टि–कल्याण के लिए नारी वध करने में हिचकिचाते नहीं है। कलंकिनी नारी अहल्या का उद्धार करते है। अज्ञात कुलशीला सीता का वरण करते है। राज्य का सुख त्यागकर जंगल में जाते है, अछूतों का उद्धार करते है, वानर सेना को जुटाते है। धर्मजीवी और परम्परावादी कुल के एक क्षत्रियकुमार को अपने समय क्रांतिकारी विश्वामित्र अपनी तरह से दीक्षित करके उन्हे जननायक बना देते है, इस तथ्य को डॉ. कोहली इस प्रकार व्यक्त करते है कि वह कहीं से भी आरोपित अथवा गढ़ंत नहीं लगता है। राक्षसों के बढ़ते अत्याचार, विश्वामित्र द्वारा राजा दशरथ के सम्मुख राम–लक्ष्मण की याचना, सिद्धाश्रम के राक्षसों से युद्ध, यज्ञ रक्षा, दशरथ के सेनापति से पीड़ित निषादों से रक्षा, सेनापति और उसके पुत्र को दंडित करना, राक्षसों द्वारा अपहृत युवतियों का उद्धार, कलंकिनी और पतिता समझी जाने वाली पति–परित्यक्ता अहिल्या का उद्धार, सीता स्वयंवर, उसी संदर्भ में सीता को वीर्यशुल्का घोषित करने वाली बात, विवाह के उपरान्त परशुराम का मान–मर्दन आदि घटनाओं को लेखक ने आधुनिक संदर्भ में तर्क–संगतता के साथ प्रस्तुत किया है।

लेखक ने 'दीक्षा' की प्रमुख घटनाओं को लिया है, पर उसका चित्रण और अर्थघटन अपने ढंग से किया है। राम–लक्ष्मण के शैशव की कथा लिखते समय लेखक का ध्यान अपने घर परिवार की ओर जाता है।

कौशल्या का चित्रण कामुक राजा दशरथ की प्रथम व उपेक्षित पत्नी के रूप में हुआ है। राम उनके पुत्र और लक्ष्मण अडिग प्रेम करने वाला भाई। दशरथ का सारा प्रेम कैकेयी के लिए था। अतः सुमित्रा की भी उपेक्षा ही हुई होगी। दो उपेक्षित माताओं के पुत्रों में प्रेम–भाव सहज और मनोविज्ञान की दृष्टि से तर्कसंगत ही माना जाएगा। नरेन्द्र कोहली जी के दादा ने भी कामुकतावश तीन विवाह

किए थे। लेखक की दादी उनकी पहली और उपेक्षिता पत्नी थीं जो उनके साथ कम उनसे अलग ज्यादा रहीं। लेखक के पिता और चाचा ही नहीं, उनके दूसरे बड़े भाई–बहन भी दूसरी दादी से खासे पीड़ित और प्रताड़ित रहे हैं। अतः लेखक के सामने राम–लक्ष्मण के शैशव का और दूसरा क्या रूप हो सकता था। लेखक के पिता छोटी दादी के हाथों कई बार पिट चुके थे, तो राम को कैकेयी ने क्यों न पीटा होगा। अतः कौशल्या और कैकेयी के चित्रण में लेखक की दोनों दादियाँ ही उभर कर आयीं हैं।''[1] राम कथा एक प्रख्यात कथा है––जन विश्रत कथा। भारत तथा बृहत–भारत में उसके कई–कई रूप मिलते हैं। उत्तर–भारत में तो बाकायदा राम लीलाएँ होती हैं। ऐसे में उसकी घटनाओं और तथ्यों में बहुत ज्यादा बदलाव नहीं ला सकते। जो बात ऐतिहासिक उपन्यासों पर लागू होती हैकि उसमें ऐतिहासिक तथ्यों के साथ लेखक खिलवाड़ नहीं कर सकता, वही बात पौराणिक उपन्यासों में भी लागू होती है कि पौराणिक उपन्यासकार पुराणों में उल्लिखित घटनाओं और तथ्यों को मनचाहे ढंग से तोड़–मरोड़ नहीं सकता। तथापि लेखक ने कहीं–कहीं परिवर्तन किए है। लेखक का कथन है कि सम्पूर्ण बाल्मीकीय रामायण में उनको उर्मिला कहीं नजर नहीं आती।[2] अतः लेखक ने लक्ष्मण को अविवाहित माना है। उन्होने लक्ष्मण को राम का समव्यस्क भी नहीं माना है। उन्होने लक्ष्मण को छोटा बताया है और दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ वाली बात को तत्कालीन राजाओं की एक रूढ़ि माना है।[3] राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ सिद्धाश्रम जाते है। रास्ते भर विश्वामित्र राम को दीक्षा देते हैं और साथ ही साथ राम को अपनी सूक्ष्म विश्लेषक दृष्टि से तौलते भी रहते हैं कि वह सच में उनके विश्वास के लायक है भी या नहीं। क्या उनको दिव्यास्त्रों का ज्ञान

[1] संकलनः ईषान महेष, नरेन्द्र कोहली ने कहा, पृ0सं0–40–41
[2] संकलनः ईषान महेष, नरेन्द्र कोहली ने कहा, पृ0सं0–41
[3] संकलनः ईषान महेष, नरेन्द्र कोहली ने कहा, पृ0सं0–41

दिया जा सकता है ? क्या वे उसका अनुचित प्रयोग तो नहीं करेंगे? और पूर्णतयाः आश्वस्त होने के बाद विश्वामित्र राम को शास्त्रास्त्रों का प्रशिक्षण और उनकी परिचालन विधि समझाते हैं। यथा –''रघुनन्दन! तुम्हारा कल्याण हो। यह दिव्य और महान दंडचक्र, यह धर्मचक्र, यह कालचक्र, यह विष्णुचक्र तथा यह अत्यंत भयंकर ऐन्द्रचक्र है। यह ऐषीकास्त्र और यह परम उत्तम ब्रह्मास्त्र है पुत्र। ये मोदकी और शिखरी नामक गदाएँ है। पुरूष सिंह ! ये धर्मपाश, कलापाश, और वरूणपाश नामक उत्तम शस्त्र है। राम ! तामस, महाबली, सौयन, संवर्त, दुर्जय, मोसल, सत्य और मायामय उत्तम अस्त्र भी मैं तुम्हे अर्पित करता हूँ। सूर्य का तेजःप्रभ अस्त्र भी तुम्हे देता हूँ। सोम का शिशिर नामक अस्त्र और मनु का शीतेषु नामक अस्त्र भी तुम लो। ....और महाबाहु ! अब इनके प्रयोग की विधि भी सीख लो।[1]

राम जैसे एक चमत्कारिक लोक में आ गये थे। राम को इस बात का आश्चर्य होता है कि अपने शिक्षणकाल में गुरू वशिष्ठ ने इन अस्त्रों की कभी चर्चा भी नहीं की थी। और विश्वामित्र उन्हे वे अस्त्र दे रहे थे। राम का मन विश्वामित्र के प्रति श्रद्धा से भर उठता है।

कालचक्र का प्रयोग कर राम ताड़कावन की महान राक्षसी ताड़का का वध करते है। ताड़का–वध के पूर्व विश्वामित्र पूरी तरह से राम को इस संदर्भ में दीक्षित करते है–''यह न हो कि ताड़का को सम्मुख देखकर तुम धर्म–संकट में पड़ जाओं कि वह निःशस्त्र है। रघुनन्दन ! क्षत्रियों के युद्ध के नियम केवल उन क्षत्रियों के साथ युद्ध के लिए है, जो उन नियमों की मर्यादा मानकर युद्ध करते हैं। राक्षस युद्ध के नियमों को बिलकुल नहीं मानते। अतः उन नियमों का विचार मत करना। यदि तुम नियमाधीन युद्ध करना चाहोगे, तो वह संभव नहीं होगा। ....और तात ! यह बात भी मन में मत लाना कि वह स्त्री है और क्षत्रिय होकर स्त्री का वध करना तुम्हारे लिए धर्मोचित

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –48

नहीं है। ऐसे नियमों का विचार सर्वथा अधर्म होगा। इस समय तुम्हारा मात्र एक धर्म है – राक्षस वध।''[1]

विश्वामित्र के कहे अनुसार राम ताड़का का वध करते है। लोगों में विश्वास जगाते है तथा आश्रमवाहिनी का निर्माण करते है। यहाँ यह ध्यातव्य रहे कि बांग्लादेश के नेताओं ने भी पश्चिम पाकिस्तान के नृशंस अत्याचारियों के खिलाफ लड़ने के लिए मुक्तिवाहिनी का निर्माण किया था। मुक्तवाहिनी–जन–सामान्य द्वारा प्रायः निःशस्त्र युद्ध। पाकिस्तानियों ने बांग्लादेश की स्त्रियों के साथ अत्याचार किए थे। उन अत्याचारों और बलात्कारों के कारण कई स्त्रियाँ गर्भवती हो गई थी। बाद में बांग्लादेशवासियों ने इस समस्या को भी सुलझाया था और राष्ट्र द्वारा उन स्त्रियों को सम्मानित किया गया था। अतः राम ने भी यहाँ ताड़का–वन की पीड़ित स्त्रियों को गगन जैसे सहनशील उदार–वीर के संरक्षण में छोडते हैं।

अहल्या प्रसंग में भी लेखक ने कुछ संशोधन किया है। अहल्या की प्रख्यात कथा इतनी सी थी कि इन्द्र ने अहल्या के साथ व्यभिचार किया। फलतः गौतम ऋषि ने अहल्या को त्याग दिया। उसे शाप दिया कि वह पत्थर की शिला हो जाए। अनुनयविनय पर उस शाप का यह निवारण दिया कि जब राम वन में आयेंगे तब उनके स्पर्श से वह पुनः चैतन्यवान हो जाएगी।इस पूरे प्रसंग को लेखक ने संशोधित करके उसे आधुनिक अर्थघटन दिया है।

''गौतम एक बुद्धिजीवी है। एक विश्वविद्यालय के कुलपति। वहाँ एक सम्मेलन होता है जिसमें ऋषि–मुनियों के साथ–साथ कुलाधिपति के रूप में मिथिला के सम्राट सीरध्वज जनक तथा मुख्य अथिति के रूप में इंद्र आते है। इंद्र भ्रष्ट सत्ताधारी शासक का प्रतीक है। अहल्या इंद्र द्वारा बलात्कृत होती है। गौतम का ऋषित्व असहाय सिद्ध होता है। वह इंद्र को दंडित नहीं कर पाते। अहल्या को चाहते हुए भी और यह जानते हुए भी कि अहल्या निर्दोष है, गौतम उस

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0–51–52

स्थान को छोड़ने पर विवश हो जाते है। आश्रम और आश्रमवासी सब छोड़कर चले जाते है। इस घटना से अहल्या जड़ हो जाती है। विक्षिप्त–सी होकर संज्ञा–शून्य अवस्था में वह किसी तरह अपना एकाकी अभिशप्त जीवन व्यतीत करती है। अन्त में जब राम–लक्ष्मण उसका चरण–स्पर्श करते है, तब उनके द्वारा सम्मानित होने पर, उनकी मानवीय संवेदना और सहानुभूति से, उसकी खोई चेतना लौट आती है और वह अपराध बोध से मुक्त हो जाती है।

''तुमने मेरे चरण छुए है, राम और लक्ष्मण ! तुम्हारा कल्याण हो। इच्छा होती है कि मैं तुम्हारे चरण छू लूँ। ......मैं अपनी कृतज्ञता किस रूप में अभिव्यक्त करूँ? तुम लोग नर–श्रेष्ठ हो। युग–पुरुष हो। कदाचित आज तक मैं तुम लोगों की ही प्रतीक्षा कर रही थी। मैं ही नहीं आज सम्पूर्ण आर्यावर्त तुम्हारे जैसे युग–पुरूष की प्रतीक्षा कर रहा है। मैं अकेली जड़ नहीं हुई थी। सम्पूर्ण आयावर्त जड़ हो चुका है। वे सब तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे है। वीर बंधुओं। तुम उनमें उसी प्रकार प्राण फूँकों, जिस प्रकार तुमने मुझमें प्राण फूँके है। तुम सम्पूर्ण दलित वर्ग को सम्मान दो, प्रतिष्ठा दो। सामाजिक रूढ़ियों में बँधा हुआ यह समाज न्याय–अन्याय, नैतिकता–अनैतिकता, आदि के विचार और प्रश्नों के संदर्भ में पूर्णतः जड़–पत्थर हो चुका है। राम ! तुम इन सबको प्राण दो। .....मेरी प्रतीक्षा आज पूरी हुई। मेरी साधना आज सफल हुई। तुमने स्वयं आकर मेरा उद्धार किया है, आज मैं निर्भय, ग्लानिशून्य मन से कहीं भी जा सकती हूँ। ....मेरा आत्मविश्वास लौट आया है। मै निःसंकोच अपने पति के पास जा सकती हूँ मेरा मन किसी से आँखें नहीं चुराएगा। राम ! तुमने मेरे दुविधाग्रस्त मन को विश्वास दिला दिया है। कि मैं अपराधिनी नहीं हूँ। वह अपराध–बोध मेरा भ्रम था।''[1]

इस प्रकार यहाँ लेखक ने प्रकारान्तर से यह इंगित किया है कि जो समाज में प्रतिष्ठित हो चुका है, जिसे लोग मान–सम्मान देते

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0–149

हैं, ऐसे व्यक्ति की बात सब लोग स्वीकार कर सकते हैं। चरित्रवान नेता और समाजसुधारक या धर्मगुरू ही लोगों को प्रभावित कर सकते हैं। अतः जड़–निष्प्राण रूढ़ियों को तोड़ने का काम भी वे आसानी से कर सकते है।

सीता–प्रसंग में भी लेखक ने एक नया दृष्टिकोण अपनाया है। राम की दीक्षा यहाँ पूरी होती है। सीता–वरण राम के लिए अनेक परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के समान था – बल और शक्ति की परीक्षा, पिता से स्वतंत्रता की परीक्षा, प्रायः विरोधी राजा सीरध्वज से नये संबंध जोड़ने की परीक्षा और इन सबके ऊपर जाति–कुल–गोत्र के विरूद्ध लड़ने की परीक्षा। उपन्यास के प्रारंभ में दशरथ की राजसभा में वशिष्ठ ने राम के विवाह के संदर्भ में जो बातें कहीं थीं। उनमें यही कुल–गोत्र, शुद्धता–अशुद्धता की बातें थी–"राम का विवाह कर देना चाहिए, वे ब्रह्मचर्य की आयु पूर्ण कर चुके हैं। किन्तु सम्राट को विवाह–संबंध स्थापित करते हुए अपने वंश के अनुकूल समधी की खोज करनी चाहिए। इस विषय में यदि मेरी इच्छा जानना चाहें तो मैं कहूँगा कि सम्राट यदि किन्ही राजनीतिक कारणों से भी चाहें, तो राजकुमार का विवाह पूर्व के व्रात्यों में न करें– जिन्होने वैदिक कर्म–काण्ड को त्यागकर, स्वयं को ब्रह्मवादी चिंतन में विलीन कर लिया है। सम्राट ! राजनीति का अपना महत्व है, किन्तु आर्य जाति के रक्त, कर्म, संस्कृति एवं विचारों की शुद्धता का महत्व उससे भी कहीं अधिक है। पूर्व के अतिरिक्त दक्षिण में भी मुझे ऐसा कोई राजवंश नहीं दीखता, जो रघुकुल का उपयुक्त समधी हो सके। केवल उत्तर एवं पश्चिम ..।"[1]

यहाँ वशिष्ठ का इशारा सीरध्वज जनक की ओर भी है। जनक की विचारधारा गुरूवशिष्ठ की विचारधारा से मेल नहीं खाती है। वशिष्ठ उन तमाम लोगों के विरोधी है जो उनकी विचारधारा में विश्वास नहीं रखते है। इस प्रकार वे परंपरावादी, रूदिवादी और जड़ है।

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –17

सीता प्रसंग के संदर्भ में लेखक के सामने अनेक समस्याएँ है– धनुष का स्वरूप क्या हो, सीरध्वज राजा जनक द्वारा सीता को वीर्यशुल्का घोषित करने का कारण, सीता की जन्म–कथा और सीता का जीवन के प्रति दृष्टिकोण।

इस संदर्भ में डॉ. नरेन्द्र कोहली कहते है–''सोचते हुए एक मजेदार बात से आमना–सामना हुआः हमारे सारे मिथकों में महान शस्त्रों के देनेवाले शिव है– निश्चित रूप से वे एक विकसित शस्त्र शाला के प्रतीक है। अतः यह शिव–धनुष भी कोई विचित्र यंत्र ही होना चाहिए जिसे सीरध्वज ने यद्ध में प्रयुक्त नहीं किया और शोभा की वस्तु बना दिया, जिसे सैकड़ों मनुष्य और पशु खींचकर रंग–स्थली में लाते हैं और पसीना–पसीना हो जाते है। मैने शिव–धनुष भी कोई विचित्र यंत्र ही होना चाहिए जिसे सीरध्वज ने युद्ध में प्रयुक्त नहीं किया और शोभा की वस्तु बना दिया, जिसे सैकड़ों मनुष्य और पशु खींचकर रंग–स्थली में लाते हैं और पसीना–पसीना हो जाती है। मैंने शिव–धनुष को आधुनिक टैंक जैसे किसी यंत्र में रूप में स्वीकार किया है। यह प्रत्येक बात का हठपूर्वक आधुनिक समाधान देने का प्रयत्न नहीं है, यह शिव के महान शस्त्र–निर्माता रूप को दृष्टि में रखकर आगे की घटनाओं की पृष्ठ भूमि स्वरूप की गई कल्पना है। राम–रावण के अंतिम युद्ध तक देवताओं और राक्षसों द्वारा शिव से शस्त्रास्त्र प्राप्त करने की होड़ लगी रहती है। जैसे आज के युग में छोटे देश रूस तथा अमरीका जैसी महाषक्तियों से शस्त्र मांगते ही रहते है।''[1] उपन्यास में सीता के संदर्भ में जो संशोधन किया है, उसमें सीता जन्म का भी प्रसंग है। पुराणों में कहा गया है कि रावण ऋषि–मुनियों के शरीर में बाण चुभाकर रक्त निकालता था और उसको वह एक घट में संग्रहित करता था। उसने वह घट कहीं भूमि में गाड़ दिया था जो हल चलाते हुए सीरध्वज राजा जनक को प्राप्त

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0 –43

हुआ और उसी में से सीता का जन्म हुआ। ऐसी भी कथा है कि सीता रावण और मंदोदरी की संतान है, किंतु उसके जन्म पर ऐसी भविष्यवाणी हुई कि यह कन्या उसके पिता के जीवन में विपत्ति लाएगी, अतः घबराकर रावण ने एक सन्दूक में बंद करके उसे कहीं गाड़ दिया। जमीन जोतते हुए यह संदूक राजा जनक के किसी कृषक को मिला, जो उसने राजा को सौंप दिया। संदूक से जा कन्या निकली राजा ने उसे पुत्रीवत् पाल–पोसकर बड़ा किया।

डॉ. कोहली ने इस कथा को इस रूप में रखा है–सीरध्वज को यह कन्या अपने किसी खेत में हल चलाते हुए प्राप्त हुई थी, सीरध्वज करूणावश उस बालिका को पुत्रीवत् पालते है। किन्तु यह बात सभी जानते है कि सीता अज्ञात कुलशीला है। उसके कुल और जाति का किसी को पता नहीं है। ऐसी स्थिति में आर्य–सम्राटों और राजकुमारों में से कोई भी उपयुक्त पुरुष उस अज्ञात कलुशीला कन्या का पाणिग्रहण करने के लिए प्रस्तुत नहीं है और अपनी पोषिता पुत्री सीता को जनक आर्येतर जातियों में दे नही सकते या देना नहीं चाहते। इसमें पिता का हृदय और सम्राट का अहं ये दोनों हैं।

इसलिए जनक ने एक अद्‌भुत युक्ति सोची। कहते हैं, किसी समय महादेव ने युद्ध से निरस्त होकर अपना धनुष सीरध्वज के पूर्वजों को प्रदान किया था। यह घनुष कोई साधारण धनुष नहीं है और शिव अनेक दिव्यास्त्रों के निर्माता है। ''धनुष'' शब्द से तात्पर्य इतना ही है कि उस यंत्र से विभिन्न प्रकार के प्रक्षेपास्त्र (दिव्यास्त्र) प्रक्षेपित किए जा सकते है। शिव का यह धनुष आज भी सीरध्वज की युद्धशाला में पड़ा है, किन्तु वह पड़ा ही है, उपयोग में नहीं आ रहा, क्योंकि उसके संचालन की विधि कोई नहीं जानता, स्वयं सीरध्वज जनक भी नहीं।[1]

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0–155

जनक ने उसी धनुष को लेकर सीता के विवाह की युक्ति खोजी। उसने यह प्रण किया है कि जो कोई भी उस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा देगा, अर्थात् उस यंत्र को संचालित कर देगा, सीता का विवाह उसी के साथ होगा। इस तरह सीता को वीर्यशुल्का घोषित कर दिया गया है। अज्ञात कुलशीला कन्या का वरण वैसे तो कोई आर्य राजकुमार करेगा, नहीं, किन्तु बात जब पराक्रम प्रदर्शन की होगी तो उसे क्षत्रिय धर्म समझ कर कई पराक्रमी वीर तैयार हो जाएँगे और यदि कोई पुरुष उनकी इस परीक्षा पर खरा नहीं उतरा तो वे आर्य राजकुलों में जमाता नहीं पा सकने की अक्षमता के आरोप से बच जाएँगे। ऐसी स्थिति में सीता भी अज्ञातकुलशीला होने के कारण अविवाहित रहने के आक्षेप से बच जाएगी।[1]

लेखक ने सीता के असाधारण दिव्य सौन्दर्य का वर्णन भी किया है– ''आज सीता चमत्कारिक रूपवर्ती युवती है, जिसके सौन्दर्य की चर्चा आर्य–सम्राटों के प्रासादों के भी बाहर आर्यावर्त के बहुत परे तक राक्षसों, देवताओं, गन्धर्वों, किन्नरों, नागों आदि के राजमहलों में भी हो रही है।''[2]

किन्तु यह भी एक विडम्बना है कि जाति–पाति, कुल–गोत्र ऊँच–नीच की मान्यताओं में जकड़े हुए समाज में ऐसी अभूत पूर्व अनिंद्य सुन्दरी के साथ विवाह के लिए भी कोई उपयुक्त वर तैयार नहीं होता।

इस संदर्भ में राम गुरू विश्वामित्र को कहते है। ''अद्भुत! चकित हूँ, एक असाधारण रूपवती राजकुमारी से विवाह करने के लिए कोई आर्यकुमार प्रस्तुत नहीं है यदि वह अज्ञात कुलशीला है तो उसमें उस कन्या का क्या दोष? हमारा समाज कैसा जड़ है, गुरूदेव !वनजा

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, द्रष्टव्य : दीक्षा, अभ्युदाय, पृ0सं0–155
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0–155

बिना अपने किस दुष्कर्म के पीडित है, अहल्या बिना अपराध के दण्डित है, सीता बिना दोष कें अपमानित है। ऐसा क्यों है, गुरूदेव?''[1]

यह विश्वामित्र की 'दीक्षा' का ही परिणाम है कि राम के मन में इस प्रकार के प्रश्न उठते है। राम यदि गुरू वशिष्ठ के सानिध्य में होते तो कदाचित ऐसा प्रश्न उनके मन में न उठता।

सीता–स्वयंवर कला प्रसंग भी यहाँ कुछ अलग तरह से बताया गया है। एक साथ आर्यावर्त के सब राजा या क्षत्रिय कुमार यहाँ नहीं आते, बल्कि सीता के वीर्यशुल्का घोषित होने की खबर जैसे–जैसे पहुँचती है, जिन्हे अपने पराक्रम पर भरोसा है या उसका घमंड है, ऐसी प्रत्याशी वहाँ पहुँचते है और धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाना तो दूर, उसे वे उठा भी नहीं सकते क्योंकि उसके संचालन की विधि किसी को ज्ञात नहीं है। विश्वामित्र उस यंत्र (अजगव) के परिचालन की विधि राम को समझा देते हैं, क्योंकि वे चाहते हैं कि राम का विवाह सीता से हो। यहाँ वशिष्ठ व विश्वामित्र का अंतर समझ में आता है। वशिष्ठ पूरब से कन्या लाने के विरोधी हैं, क्योंकि उनमें कुल–शील रक्त–शुद्धता आदि के विचार हैं, विश्वामित्र आधुनिक है। वे इन सब संकुचितताओं से ऊपर उठ चुके हैं। वशिष्ठ के सम्मुख केवल वर्ग हित की बात है, विश्वामित्र समिष्ट हित का विचार करते है। फलतः विश्वामित्र राम को समझाते हैं–''वैसे जनक का प्रण हमारे अनुकूल है। यदि सीधे–सीधे जनक के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा जाता कि दशरथ के राजकुमार राम के साथ सीता का विवाह कर दो, तो कदाचित जनक यह स्वीकार नहीं करना, क्योंकि आजतक अयोध्या और मिथिला के सम्राटों के सम्बन्ध कभी मैत्रीपूर्ण नहीं रहे। इस मैत्रीशून्य इतिहास के कारण अयोध्या के राजकुमार के साथ अपनी कन्या का विवाह करते हुए सीरध्वज इस विवाह से स्वंय को कम अनुभव करेगा। पुत्र ! इससे एक ओर जहाँ सीता जैसी गुणशीला रूपवती, युवती की जाति–विचार के पिशाच के हाथों हत्या नहीं होगी,

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली 'दीक्षा', पृ0सं0–156

और उसका विवाह अपने योग्य वर के साथ होगा। दूसरी ओर अयोध्या और जनकपुरी की परम्परागत शत्रुता, वैमनस्य तथा एक –दूसरे के प्रति उदासीनता समाप्त हो जाएगी। और राम ! दो प्रमुखतम सम्राटों को मिलाकर एक कर देने, उनकी सम्मिलित शक्ति को राक्षसों के विरूद्ध लड़ने के लिए तैयार कर देने का जो स्वप्न मैंने वर्षों से देखा है, वह भी पूर्ण हो जाएगा।''[1] परशुराम विषयक लेखक की अवधारणा भी थोड़ी भिन्न है यथा–''वे मेरे लिए किसी एक क्षेत्र में प्रतिष्ठित समयातीत हो चुके जड़ पात्र हैं, जो अपने ही क्षेत्र की नयी शक्तियों की ओर से आँखें बन्द रखते हैं। वे अपने क्षेत्र के नवागंतुको के लिए प्रोत्साहन कम और आतंक अधिक होते है। वे साहित्यकार भी हो सकते और क्रान्तिकारी भी।''[2] और तभी राम परशुराम को कहते हैं–''हमने अद्वितीय विद्वान गुरूओं से शिक्षा पायी है। हम जानते हैं कि सहस्त्रार्जुन जैसे जनविरोधी दुष्ट को मारकर अपने अन्याय का दमन किया था और न्याय के पक्ष में महान क्रान्ति की थी। अपने युग के दुष्ट अनाचारी ओर अत्याचारी क्षत्रिय राजाओं के विरूद्ध विद्रोह कर , आपने जन–सामान्य को धर्म युद्ध का नया मार्ग दिखाया था। आप जैसे पुराने क्रांतिकारियों का हम सम्मान करते है, पर इसका अर्थ कदापि नहीं है कि आप अकारण ही लोगों का अपमान करते फिरें और एक बात हम नहीं समझ पाते, भृगुश्रेष्ठ। ....क्रांतिकारिता और रूढ़िवादिता भी साथ–साथ चल पाती है क्या? आप कितने रूढ़िवादी हो गये है– आपने कभी सोचा है? यदि एक समय एक क्षत्रिय राजा जन–विरोधी सैनिक लुटेरा था तो क्या मान लिया जाए कि प्रत्येक राजनीतिक नेतृत्व जन–विरोधी पशुबल ही होगा–या यदि एक समय ''अन्याय'' क्षत्रिय राजा के रूप में प्रकट हुआ तो क्या वह सदा उसी रूप में प्रकट होता रहेगा? आपने कैसे मान लिया कि उन अत्याचारी क्षत्रियों को मारकर आपका कार्य सदा के लिए संपन्न हो गया? आपने सतत् प्रयत्नशीलता का मूल्य पहचाना ही नहीं। क्या

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, द्रष्टव्य : दीक्षा, अभ्युदाय, पृ0सं0– 156
[2] नरेन्द्र कोहली ने कहा, पृ0सं0– 43

आपका क्रान्तिकारी मन यह नहीं जानता कि समय के साथ, अन्य वस्तुओं के समान, अत्याचार का रूप भी बदल जाता है? आपने केवल उसके एक रूप को पहचाना है। इसलिए अपने समय के क्षत्रियों की हत्या कर आप अपना परशु लिए–लिए महेन्द्रगिरि पर जा बैठे। आपने यह नहीं देखा कि आज जन– विरोधी राजनीति, पशुबल तथा धन की शक्तियों ने संयुक्त मोर्चा बनाया है और वह राक्षस–शक्ति के रूप में अभिव्यक्ति पा रहा है। कितना अत्याचार कर रहे है राक्षस। बुद्धिजीवियों ऋषियों की हत्याएँ हो रही है, ताकि जन सामान्य को उचित नेतृत्व न मिल सके, प्रजा का धन लूटकर उन्होने सोने की लंका बना ली है, नारियों का अपहरण हो रहा है, और नारी–पुरुष के सहज सम्बन्ध को पाशविक शक्तियों से संचालित करने का प्रयत्न किया जा रहा है यह सब आपको नहीं दिखता ? आपकी दृष्टि मंद पड़ गई है। आपका मस्तिष्क सो गया है। आप वर्तमान को त्याग, प्राचीन कृत्य का यश ओढ़े हुए, उचित–अनुचित, न्याय–अन्याय का विचार छोड़ लोगों को डराने धमकाने रह गये हैं, और फिर भी आप चाहते है कि लोग आपका सम्मान करें।''[1]

इतने पर भी परशुराम के मन का समाधान नहीं होता है और वे अपने कंधे से वैष्णवी धनुष उतारकर राम को उसके संचालन के लिए कहते है। यह उस अजगव के लघु–संस्करण सा था और उसकी संरचना में रत्ती–भर का भी अंतर नहीं था। अतः राम उसके संचालन में भी सफल हो जाते है। उपन्यास का अन्त इन शब्दों के साथ होता है –''नहीं, मैं आश्वस्त हुआ पुत्र ! तुम समर्थ हो और अन्याय के दलन की दीक्षा ग्रहण कर चुके हो। भगवान तुम्हारा कल्याण करे। ....परशुराम खोये हुए से अपने यान की ओर चले गये। क्षण–भर में गगन भेदी कोलाहल करता हुआ, यान आकाश में विलीन हो गया। दशरथ ने देखा–राम अपने अश्व पर बैठ चुके थे। बारात फिर से अयोध्या की ओर चल पड़ी।''[2]

---

[1] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, द्रष्टव्य : दीक्षा, अभ्युदाय, पृ0सं0– 187
[2] डॉ0 नरेन्द्र कोहली, द्रष्टव्य : दीक्षा, अभ्युदाय, पृ0सं0– 189

नरेन्द्र कोहली का समकालीन जीवन दर्षन

हिन्दी साहित्य जगत में नरेन्द्र कोहली जी का नाम विशेष आदर से लिया जाता है। वे विश्वप्रसिद्ध साहित्यकार है। आपने अधिकतर उपन्यास रामकथा तथा कृष्णा कथा को आधार बनाकर लिखे है। कोहली जी पौराणिक कथाओं को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करने में माहिर है। कोहली जी भारतीयता की जड़ों तक पहुँचते है, किन्तु पुरानपंथी नहीं है। उनकी मूल चेतना किसी किसी विदेशी विचार धार से नहीं उपजी, बल्कि उसका आधार भारतीय सांस्कृति चेतना है। उनकी संवेदनशील चेतना ने अतीत को मथकरजो निष्कर्ष निकाले हैं वे वर्तमान को भी समझने–समझाने में सहायक है। उन्होने अपने उपन्यासों में पौराणिक व सांस्कृतिक तथ्यों को अपनी बुद्धिवादी कैंची से कतरकर शुद्ध मानवीय एवं आधुनिकता के संदर्भ में व्याख्यायित करने का प्रयास किया है और अपने विशेष कौशल का लोहा मनवाया हैं कोहली जी ने अपनी सभी विधाओं में आधुनिक व पौराणिक मानवीय संवेदनाओं तथा समस्याओं का समाधान आधुनिक संदर्भो में बखूबी किया है।

प्रस्तुत अध्याय में मिथक की परिभाषा तथा स्वरूप की विवेचना करते हुए मिथक की भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा पर प्रकाश डाला गया है। 'दीक्षा' उपन्यास पौराणिक होते हुए भी आधुनिक समसामयिक परिवेश के लिए भी सर्वथा उपयुक्त है। इसमें ऐसी अनेक पौराणिक घटनाओं का अर्थघटन आधुनिक ढंग से किया गया है जैसे–अहल्या तथा धनुष प्रसंग आदि। कोहली जी ने अनेक पौराणिक मिथकों को जिन्हे तर्क की वैज्ञानिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से स्वीकार करना असंभव सा था, को न केवल आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया है किन्तु अनेक मिथकों को आधुनिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्पष्ट करते हुए अपने तर्कपूर्ण वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नवीन दृष्टि व स्वरूप में प्रस्तुत किया है तथा कथा की पौराणिकता भी खण्डित नहीं हुई है।

*****

सहायक ग्रंथ

1. डॉ. नरेन्द्र कोहली, दीक्षा वाणी प्रकाशन, दिल्ली
2. डॉ. नरेन्द्र कोहली, मेरे साक्षात्कार किताबघर प्रकाशन
3. विवेकी राय, नरेन्द्र कोहली : अप्रतिम कथा यात्री वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. संकलन–ईशान महेश, नरेन्द्र कोहली ने कहा शुभम प्रकाशन, दिल्ली
5. डॉ. पुष्पा ठक्कर दिनकर काव्य में युग–चेतना
6. लक्ष्मीकांत वर्मा, नई कविता के प्रतिमान
7. डॉ. रामगोपाल वर्मा, साहित्य के नये संदर्भ
8. भगवती प्रसाद बाजपेयी व डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता, समस्यामूलक उपन्यासकार
9. डॉ. इंद्रनाथ मदान, हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख
10. संपादक–पदुमलाल, बख्शी और हेमचन्द मोदी साहित्य शिक्षा
11. डॉ. गणेशन, हिन्दी उपन्यास का अध्ययन।
12. डॉ. श्याम सुन्दर, साहित्यालोचन।
13. डॉ. प्रताप नारायण टंडन, हिन्दी उपन्यास कला।
14. सं. श्याम सुंदर दास, गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस
15. कीर्तिवल्लभ (शोध प्रबंध), ललित निबन्ध, उद्‌भव और विकास
16. डॉ. रामसिंह अत्री, स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी गीति काव्य का षिल्प–विधान
17. श्याम सुंदर दास, भाषा–विज्ञान
18. डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य

19. डॉ. राम अवध द्विवेदी, साहित्य सिद्धांत
20. डॉ. लक्ष्मी नारायण वर्मा, पुराख्यान और कविता।
21. पाण्डेय शशि भूषण, मनोविज्ञान और मिथकीय आलोचना।
22. वासुदेवषरण अग्रवाल, वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति।
23. डॉ. अश्विनी पराषर, हिन्दी नयी कविता : मिथक काव्य।
24. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रंथमाला खण्ड–7
25. डॉ. नगेन्द्र, मिथक और साहित्य।
26. डा. विजयेन्द्र स्नातक, विमर्श के क्षण
27. नरेश मेहता, महाप्रस्थान यात्रा पर्व
28. बसंती पंत, हिन्दी उपन्यास : रचना विधान, युग बोध

******